॥ ओ३म् ॥

निरुक्तकार और वेद में इतिहास

लेखक

तपोमूर्त्ति पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु

प्रकाशक

रामलाल कपूर ट्रस्ट

लाहौर

प्रकाशक—
रूपलाल कपूर
मन्त्री
रामलाल कपूर ट्रस्ट, लाहौर।

मुद्रक
नानक चन्द भनोत एम० ए०, दयानन्द प्रेस, चङ्गड़ मुहल्ला, लाहौर।

निरुक्तकार और वेद में इतिहास

सज्जन वृन्द ! वेदों में इन्द्र, मरुत, आङ्गिरस, परुच्छेप, वसिष्ठ, विष्णु, ब्रह्मा, पराशरादि शब्द अनेक बार आये हैं। इन का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में भी विविध रूप से किया गया है। वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर ही यास्क तथा उस से पूर्व नैरुक्तों ने इन शब्दों के सम्बन्ध में लेखन किया। निरुक्त का वेद के साथ साध्य साधन रूप सम्बन्ध है। वेदाङ्ग होने से भी निरुक्त का महत्त्व मानना ही पड़ेगा। यहीं तक नहीं अपि तु यह ग्रन्थ वेदार्थ का प्रतिपादक है। वेदार्थ की प्रक्रिया बताना ही इस का मुख्य ध्येय है। इसी से जो बात निरुक्त के आधार पर कही [illegible] भी कोई अवहेलना नहीं कर सकता॥

इतिहास के सम्बन्ध में जो वाद फैला हुआ है मेरे विचार में उस में मुख्य कारण निरुक्त में इतिहास का प्रतिपादन है। अर्थात् जब "वेदार्थ प्रक्रिया का प्रतिपादक" ग्रन्थ निरुक्त ही स्वयं वेद में स्पष्ट इतिहास बतावे तब इस को कौन वैदिकधर्मी वेदानुयायी हेय बतला सकता है। जब स्पष्ट रूप से निरुक्त में भिन्न २ व्यक्तियों का इतिहास उन की कुलपरम्पराओं, तथा तात्कालिक घटनाओं सहित सर्वथा स्पष्ट पाया जाता है। तब यह कैसे कहा जावे कि यास्क मुनि वेद में इतिहास नहीं मानता।

मेरे विचार में निरुक्त में यत्र तत्र "तत्रेतिहासमाचक्षते" इस वर्णन को देख कर ही प्रायः लोगों ने वेद में व्यक्तियों के इतिहासवाद की धारणा बनाई। इसी से यास्क के निरुक्त को कई एक महानुभावों ने हेय तक बतला दिया।

इस का प्रमाण मासिक पत्रिका "गङ्गा" के प्रसिद्ध "वेदाङ्क" से दिया जाता है। जो बहुत उत्तम अङ्क निकला है जिस के लिए सम्पादक महोदय को हार्दिक धन्यवाद है। पर हैं वह लेख वेद पर पूर्व पक्ष ही, जिन के समाधान का भार आर्य समाज पर है। देखें भविष्यत् में आर्य समाज इस के लिए क्या आयोजना करता है।

इस "वेदाङ्क" में गुरुकुल वृन्दावन से एक पण्डित महानुभाव का लेख है। उस लेख के सार भूत शब्द दे देने से ही ज्ञात हो जायगा कि जिन सज्जनों से समाधान की आशा रखनी चाहिये उन को भी कहां तक इस विषय में भ्रम है।

लेखक महोदय के शब्द निम्न प्रकार हैं:—

"यास्क का निरुक्त देखने से पता चलता है कि पुराणों के अनुसार यास्क भी वेदों में इतिहास मानते थे" देवापि शन्तनु की कथा देते हुये लिखते हैं:—"तब शन्तनु ने देवापि से राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना की देवापि ने कहा मैं तुम्हारा पुरोहित बनूंगा और यज्ञ कराऊंगा जिस से पानी बरसेगा। यह हैं निरुक्तकार यास्काचार्य के शब्द। इस से महाभारत और यास्क के उपाख्यानों में घनिष्ठता आ गई है"।

"वत् उपमावाची शब्द पर लिखते हुये ३ अ० के ३ पाद में यास्क ने एक मन्त्र दिया है—'प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्। अङ्गिरस्वत् महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम्'।

इस का वे अर्थ करते हैं 'हे ईश्वर जैसा तुम ने प्रियमेध आदि ऋषियों की प्रार्थना को सुना है, उसी प्रकार मुझ प्रस्कण्व की भी प्रार्थना सुनो'। हमें यह अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिये कि इस मन्त्र में आये हुये सब नाम यास्क के अनुसार ऋषियों के ही हैं। यास्क ने उस के विषय में लिखा है 'प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः' आदि॥

'तत्रब्रह्मेतिहासमिश्रमृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति' अर्थात् वेद इतिहासों, ऋचाओं, गाथाओं से युक्त है। (देखो गङ्गा-वेदाङ्क पृ० २६८-२६९)

हम लेखक महोदय को धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने "निरुक्त में इतिहास" पर बहुत संक्षिप्त, तथा उत्तम पूर्व पक्ष लिख दिया। यद्यपि मैं आप सज्जनों के संमुख बहुत से और भी पूर्व पक्ष रखता परन्तु प्रकृत विचार के लिये इतना ही पूर्व पक्ष पर्याप्त है अतः अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं।

बस इस मौलिक भ्रम का दूर करना ही मेरे लेख के इस भाग का अभिप्राय है। इस इतिहास के ठीक समझ में आ जाने से निरुक्त सम्बन्धी शेष शङ्कायें बहुत ही सुगमता से निराकृत हो जाती हैं॥

अथात्र समाधिः

निरुक्तकार यास्क मुनि ने अपने ग्रन्थ में विविध वादों का वर्णन किया है—

१. अध्यात्मम्, २. अधिदैवतम्, ३. आख्यानसमयः, ४. ऐतिहासिकाः ५. नैदानाः, ६. नैरुक्ताः, ७. परिव्राजकाः, ८. पूर्वे याज्ञिकाः, ९. याज्ञिकाः

यह ६ नौ प्रकार के वाद यास्क ने उल्लेख किये हैं हम यहां पर केवल ऐति-हासिक-आख्यानपक्ष को ही लेंगे। शेष वादों के विषय में आगे लिखेंगे। निरुक्त में 'इतिहास' शब्द ६ स्थलों में आता है। ३ स्थलों में 'इति ऐतिहासिकाः' ऐसा है। और ८ स्थलों में "आख्यान" शब्द का उल्लेख मिलता है।

इस सब का सामाधान निम्न प्रकार है:—

हर एक ग्रन्थ की अपनी २ परिभाषा Technicalities फ़ारमूले Formulas हुआ करते हैं जब तक उन पर भली प्रकार से विचार नहीं हो जाता तब तक उस ग्रन्थ के अभिप्राय को नहीं समझा जा सकता। व्याकरण शास्त्र को ही ले लीजिये उस में अ, ए, ओ इन तीन अक्षरों की "गुण" संज्ञा है। इसी प्रकार "वृद्धि" से व्याकरण शास्त्र में आ, ऐ, और औ इन तीनों को समझा जाता है। "बहुलं तणि" महाभाष्यकार पतञ्जलि 'तणि' से संज्ञा और छन्दः का ग्रहण करते हैं। "किमिदं तणिरिति। संज्ञाछन्दसोरिति" ॥

व्याकरण में जहां २ गुण, वृद्धि, तणि आदि शब्द आवेंगे वहां २ पर उप-र्युक्तों का ही ग्रहण करना होगा। न कि वैशेषिक का गुण इत्यादि यह बात प्रत्येक शास्त्र के विषय में सर्वसम्मत है। इस से कोई नकार नहीं कर सकता ॥

यास्क की इतिहास की परिभाषा

अब इतिहास के विषय में यास्क की अपनी परिभाषा क्या है इस का निरुक्त से प्रतिपादन किया जाता है ॥

(१) निरुक्त २-१६ में दिशा के नाम बताते हुए 'काष्ठा' शब्द का उदाहरण में यास्क का निम्न लेख है:—

"अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।

वृत्रस्य निण्यं विचरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥ ऋ० १-३२-१०॥

तत् को वृत्रो मेघ इति नैरुक्ताः, त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहाहिकाः। अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति, अहिवत्तु खलु मन्त्रवर्णा ब्राह्मणवादाश्च ॥ (देखो तै० सं० २-४-१२-२)

अर्थात् (यहां इस मन्त्र में) वृत्र कौन है। नैरुक्तों के मत में 'वृत्र' नाम है मेघ का। ऐतिहासिकों के मत में 'वृत्र' का अर्थ 'त्वाष्ट्र असुर' (त्वष्टा का पुत्र) है। जल,

सूर्य तथा विद्युत् के मिलने से वर्षा होती है। इस में जो युद्ध (संग्राम) का वर्णन है वह उपमा रूप से है (न कि वास्तविक किन्हीं मनुष्यों का युद्ध है) इस में अन्य हेतु भी देते हैं कि 'अहि' शब्द वाले मन्त्रों के वर्णन तथा ब्राह्मण वचन भी इस विषय में पाये जाते हैं। तथा मन्त्रों और ब्राह्मणों में 'वृत्र' के सदृश 'अहि' को भी इन्द्र का प्रतिद्वन्द्वी कहा गया है ॥

यहां "उपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति" यह वचन यास्क के इतिहास की परिभाषा का एक अङ्ग है। भाव स्पष्ट है अधिक क्या लिखें।

(२) अब हमें यह देखना है कि यास्क के मत में उपमारूप युद्ध तथा अन्य इतिहास और आख्यानों को क्यों कहा गया है। इस का उत्तर यास्क स्वयं देते हैं—निरु० १०-१०।

"ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता"

मन्त्रार्थों के द्रष्टा ऋषि की आख्यान अथवा इतिहास को लेकर (आख्यान से युक्त) मन्त्रार्थ कहने में प्रीति होती है।"

मन्त्रों के अर्थों में जहां जहां आख्यान, इतिहास बतलाये गये हैं वह सब उन उन ऋषियों ने ऐसा कहने की प्रीति-प्रेम के कारण से बतलाये हैं। वह वास्तविक नहीं अर्थात् किन्हीं मनुष्यादि व्यक्ति विशेषों (Proper names) के इतिहास या आख्यान नहीं हैं। इस बात को ऊपर भी 'उपमार्थेन' कह कर यास्क ने अपना हृदय समक्ष रख दिया है।

जब ग्रन्थकार स्वयं ही स्पष्ट अपना भाव बता रहे हैं तब ग्रन्थकर्त्ता के अभिप्राय से विरुद्ध भाव लेने से इस ग्रन्थ का यथार्थ तत्व कैसे समझ में आ-सकता है। व्याकरण शास्त्र में "मिदेर्गुणः" "गुणोर्त्तिसंयोगाद्योः" के गुण से वैशेषिक का गुण पदार्थ लेकर तथा महाभाष्यकार की "विपरीतं तु यत् कर्म तत् कल्मं कवयो विदुः" 'कल्म' संज्ञा से उन के अभिप्रेत अर्थ को ग्रहण न करके विपरीत अर्थ लेने वाले क्या त्रिकाल में भी यथावत् अर्थ तक पहुंच सकते हैं? कदापि नहीं ॥

यह "आख्यान की प्रीति" कहानी द्वारा समझाने की प्रीति, मेरे विचार में विश्व भर में व्यापक है। जैसा कि देखा जाता है कि बच्चों को स्वभाव से ही कहानी सुनने में प्रीति होती है। वह माता पिता को वार वार कहते सुनाई देते

हैं "माता जी ! कहानी सुनाओ !" रात्रि को सोते समय प्रायः यह बात सर्वत्र देखी जाती है ॥

और देखिये ! व्याख्यानों में भी, अथवा सामान्य पाठ पढ़ाने में भी इसी प्रीति का अवलम्बन देखा जाता है। वही व्याख्यान या पाठ अधिक सरल तथा सर्वग्राही समझा जाता है जिस में कोई दृष्टान्त हो (परन्तु आज कल तो मर्यादा से अधिक दृष्टान्त की भरमार तथा वास्तविक तत्त्व का प्रायः अभाव रहने से ग्राह्य नहीं केवल हंसी मज़ाक का प्रेमी बना देना बहुत हानिकारक है)। शुष्क युक्तियां मात्र तो केवल तार्किक लोग ही सुनने को तैय्यार होंगे ॥

इसी बात का प्रतिपादन पुनः निरु० १०-४६ में

"ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता"

किया है। इस से स्पष्ट है--कि

"यास्क मुनि मन्त्रों में आख्यान के कथन को ऋषियों की इस (आख्यान) रूप में कहने की प्रीति ही कारण बतलाते हैं, न कि वास्तविक आख्यान"

(३) इन आख्यानों में व्यक्ति विशेषों (Proper names) का ही इतिहास होता है यह बात नहीं। इस के लिये निरु० ५-२१ देखो

३४८९ "आह्वयदुषा अश्विनावादित्येनाभिग्रस्ता तामश्विनौ प्रमुमुचतुरित्याख्यानम्"

अर्थात्—उषा ने अश्वियों को बुलाया। आदित्य ने उस को अभिग्रस्त किया हुआ था। उस को अश्वियों ने छुड़ाया। ऐसा आख्यान (इतिहास) है"

सायं काल के समय सूर्यास्त से पूर्व उषा को सूर्य अभिग्रस्त किये हुये होता है। उस को अश्वि मुक्ति कराते हैं। सो "अश्विनौ" कौन हैं सो इस विषय में भी अपनी कल्पना न लिख कर हम यास्क के शब्दों में ही देते हैं—

तत् कावश्विनौ ? द्यावापृथिव्यावित्येके ऽहोरात्रावित्येके सूर्याचन्द्रमसावित्येके राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकाः" नि० १२-१

अर्थात्—"वह 'अश्विनौ' कौन हैं। वह द्यावापृथिवी हैं कुछ आचार्य ऐसा मानते हैं। दूसरे आचार्य कहते हैं, नहीं अश्विनौ दिन और रात्रि का नाम है। तीसरे आचार्य इन दोनों अश्वियों को सूर्य और चन्द्रमा बतलाते हैं। इधर ऐतिहासिक (इतिहास को मानने वाले) लोग इन्हीं अश्वियों से पुण्यशील दो राजा

ऐसा अर्थ लेते हैं ॥"

इसी प्रकार--

(क) "द्यावापृथिवी वा अश्विनौ" काठक सं० १३-५ ॥

(ख) "इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षमश्विनौ" श० ४-१-५-१६ ॥

(ग) 'अहोरात्रे वाश्विनौ' मै० सं० ३-४-४ ॥

(घ) 'अश्विनावध्वर्यू' श० १-१-२-१७ ॥

(ङ) सूर्याचन्द्रमसौ तौ हि प्राणापानौ च तौ स्मृतौ ।
अहोरात्रौ च तावेव स्यातां तावेव रोदसी ॥
अश्नुवाते हि तौ लोकान् ज्योतिषा च रसेन च ।
पृथक् पृथक् च चरतो दक्षिणेनोत्तरेण च ॥ बृहद्देवता ७-१२६,१२७ ॥

यह सब प्रमाण निरुक्त के पूर्वोक्त स्थल की पुष्टि में ही दिये गये हैं ।

अतः "तामश्विनौ प्रमुमुचतुः" का अर्थ उस उषा को "अश्विनौ" दिन और रात्रि ने मुक्त किया । रात्रि आने पर ही उषा का प्रादुर्भाव होता है, उधर दिन होने पर । यहां निरुक्तकार के आख्यान का स्वरूप ज्ञात हुआ कि 'उषा' को अश्वियों ने छुड़ाया । क्या उषा व्यक्ति विशेष का नाम (Proper noun) है ।

(४) "पिता दुहितुर्गर्भमाधात्" (ऋ० १-१६४-३३)

पिता दुहितुर्गर्भं दधाति, पर्जन्यः पृथिव्याः ॥ निरु० ८-२१

यहां पिता और दुहिता शब्द यौगिक हैं । रूढि नहीं यह बात स्वयं यास्क ने पर्जन्य=मेघ और पृथिवी यह दोनों अर्थ निर्देश करके बतला दी ॥

इस में एक बात और ध्यान देने की है कि पिता-पुत्र-दुहिता-मातादि शब्द केवल लौकिक माता पिता परक ही नहीं होते अपि तु इन के अर्थ अनेक प्रकार से होते हैं । जड़ पदार्थों के लिए भी पुत्रादि शब्दों का प्रयोग यास्क ने किया है । तद्यथा—

(क) "तनूनपादाज्यमिति कात्थक्यः । नपादित्यननन्तरायाः प्रजाया नामधेयं निर्णततमा भवति । गौरत्र तनूरुच्यते । तता अस्यां भोगाः । तस्याः पयो जायते पयस आज्यं जायते" ॥ निरु० ८-५

अर्थात् कात्थक्य आचार्य के मत में तनूनपात् का अर्थ आज्य अर्थात् घृत है । नपात् अननन्तरापत्य अर्थात् व्यवधान वाली प्रजा का नाम है । यहां तनू का अर्थ

है गौ। क्योंकि उस में भोग विस्तृत होते हैं (दुग्ध दधि रूप में)। उस से दूध उत्पन्न होता है और दूध से घी निकलता है अतः घृत गौ का पौत्र है।

इस से स्पष्ट है कि निरुक्तकार पुत्र-पौत्रादि शब्दों का प्रयोग जड़ वस्तुओं में भी मानते हैं। अतः पुत्र-पौत्र आदि शब्द आ जाने से इतिहासादि की घबराहट में पड़ने की आवश्यकता नहीं॥

(ख) सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापते र्दुहितरौ संविदाने।

अथर्व० ७-१२-१

(५) शेष रहा ब्राह्मणादि में इतिहास का वर्णन, इस सम्बन्ध में भी मैं अपनी ओर से कुछ न कह कर यास्क के अपने शब्द ही देता हूं—

यथो एतद् ब्राह्मणं भवतीति, बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि भवन्ति"।

निरु० ७-२४

अर्थात्—ब्राह्मणों का इस प्रकार का जो कथन है वह भक्तिवाद को ले कर है अर्थात् किन्हीं गुणों को ले कर वैसा कहा गया है। वास्तविक घटनायें इस प्रकार की हुई हैं यह बात नहीं। यहां पर इतना ध्यान रहे कि ब्राह्मण सर्वांश में भक्तिवाद को ले कर कहता हो ऐसा नहीं। न ही यास्क का ऐसा अभिप्राय है। क्योंकि निघण्टु तथा निरुक्त में आये हुए अनेक शब्द इस का प्रमाण हैं जिन का ब्राह्मणों में भी उसी प्रकार व्याख्यान किया गया है। वास्तव में यास्क के इन शब्दों का आधार यह ब्राह्मण ग्रन्थ ही हैं॥

इतने से यह स्पष्ट है कि ब्राह्मणादि में आये हुए इतिहासों को यास्क कैसा मानते हैं।

(६) मूल निरुक्त के यह सब प्रमाण हमने दिये। जिस से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि इतिहास के विषय में निरुक्तकार—

उपमार्थ-आख्यान की प्रीतिमात्र—ब्राह्मणों के आधार पर

बहुभक्तिवाद—मानते हैं॥

अब इस प्रसङ्ग में यह कहना भी अनुपयुक्त न होगा कि जब यास्क वेद को अपौरुषेय और नित्य मानते हैं। जैसाकि "पुरुषविद्यानित्यत्वात्" (निरु० १-२) ब्रह्म स्वयंभ्वभ्यानर्षत (नि० १-११) नियतवाचो युक्तयो नियतानुपूर्व्या भवन्ति' (निरु० १-१५) यह कह कर वेद को अपौरुषेय और नित्य बताया है। तब वह वेद में अनित्य इतिहास मान ही कैसे सकते हैं? जो कहा जाता है वह गौणिक-उपमारूप-औपचारिक है इस विषय का मूल हमने निरुक्तकार के अपने शब्दों में बतलाया॥

निरुक्त के आधार ब्राह्मण आरण्यक
तथा
वेद में इतिहास

इस विषय में मैं बहुत सङ्क्षेप से निरुक्त की पुष्टि में कुछ एक स्थल निर्देश कर देना ही पर्याप्त समझता हूं—

(१) निरु० २-१६ की उपर्युक्त वृत्रासुर की कथा पर स्वयं 'ब्राह्मण' क्या कहता है। देखिये शतपथ ११-६-१-६ में—लिखा है—

"तस्मादाहुर्नैतदस्ति यद् देवासुरमिति" अजमेर पृ० ५५० ॥

अर्थात्—'वृत्रासुर' युद्ध हुवा नहीं। अपि तु उपमार्थ युद्ध का वर्णन है। यह शतपथ के लेख से सर्वथा स्पष्ट है ॥

(२) १ प्रजापतिः स्वां दुहितरमभिदध्यौ। दिवं वोषसं वा मिथुन्येनया स्यामितितां सम्बभूव। स वै यज्ञ एव प्रजापतिः ॥
शतपथ १-७-४-४ ॥

२ प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यदुषसम्। मै. सं. ३-६-५।
४-२-१२ ॥ मनुस्मृति मेधातिथिभाष्य १-३२ ॥

३ सः (प्रजापतिः=संवत्सरः=वायुः) आदित्येन दिवं मिथुनं समभवत् ॥ श. ६-२-१-४ ॥

४ प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यधायद् दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये ॥ ऐ० ब्रा० ३-३३

प्रजापति की इस कथा का वर्णन ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० ६०८ में ऐसा ही है जैसा कि इन ऊपर के प्रमाणों में है। इस से इस प्रकरण के इतिहास को ब्राह्मणकार उषा-सूर्यादि नित्य पदार्थ परक ही बतलाते हैं यह इन उपर्युक्त उद्धरणों से सर्वथा स्पष्ट हो जाता है ॥

(३) शतपथ ब्राह्मण के ८ म काण्ड के प्रथम तीन ३ ब्राह्मणों में—यजुर्वेद अध्याय १३ के ५४ वें मन्त्र के व्याख्यान में मन्त्र में आये "वसिष्ठ" आदि शब्दों को शतपथकार बताते हैं—

(क) वसिष्ठ ऋषिरिति (यजु० १३-५४ प्रतीक)। प्राणो वै वसिष्ठ

ऋषिर्यद्धै नु श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठोऽथ यद् वस्तृतमो वसति तेनो एव वासिष्ठः"

(ख) भारद्वाज ऋषिरिति। (यजु० १३-५५ प्रतीक)—मनो वै भरद्वाज ऋषिरन्नं वाजं भरति तस्मान्मनो भरद्वाज ऋषिः।

(ग) जमदग्निर्ऋषिरिति। चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिर्यदनेन जगत् पश्यत्यथो मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषिः॥ अजमेर पृ० ४२४॥

(घ) "विश्वामित्र ऋषिरिति। श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिर्यदनेन सर्वतः शृणोत्यथो यदस्मै सर्वतो मित्रं भवति तस्माच्छ्रोत्रं विश्वामित्रं ऋषिः"

(ङ) विश्वकर्मा ऋषिः। वाग् वै विश्वकर्मर्षिः। वाचा हीदॅं सर्वं कृतं तस्माद् वाग् विश्वकर्मा ऋषिः......॥ अजमेर पृ० ४२५॥

इन उद्धरणों में "वसिष्ठ ऋषि" ऐसा मूल यजुः का पाठ है मन्त्र निम्न प्रकार है। यजु० १३-५४

......वसिष्ठ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः॥

यहां पर शतपथ ब्राह्मण में वसिष्ठ ऋषिः का अर्थ प्राण। भरद्वाज का मन। जमदग्निः का चक्षुः। विश्वामित्र का श्रोत्र। और विश्वकर्मा का वाग् अर्थ किया गया है।

यहां पर अपनी ओर से ही वसिष्ठ ऋषि का अर्थ प्राण किया गया हो यह बात नहीं अपितु मन्त्र में आये हुये शब्दों का ही क्रमशः व्याख्यान किया गया है। इस सम्पूर्ण प्रकरण को पढ़ जाने से इस में वसिष्ठादि इन भौतिक पदार्थों का ही ग्रहण किया गया है और कुछ भी नहीं। अतः इस से स्पष्ट है कि—ब्राह्मणकार **संहितान्तर्गत वसिष्ठादि शब्दों को व्यक्ति विशेष** (Proper names) **नहीं मानते।** यही दिखाना हम को यहां अभिप्रेत है॥

पूर्वोक्त कथन में हरिस्वामी की साक्षी॥

(क) यदपि किञ्चिदनित्यार्थवचनमिव दृश्यमानं ततो पृज्ञातिदर्वाक् प्रकृत्तवा? ग्रन्थस्यांशं कथयति—

वृत्रो ह वा इदं सर्वं वृत्वा शिष (?) इत्यादि तदपि नैरुक्तदिशा प्रवाहनित्यं एव विद्युदादिव्यवहारवाचित्वेन, इतिहासिकदिशां वा सर्ववृत्तान्ताना-

मेव शीतोष्णवर्षाद्यावर्त्तयथाकाल वर्त्तमानानां अनाद्यनन्तानां वेदेन कर्मकाल-ऽतीतरूपेण प्रतिपादनात् अदोषः ॥ (भूमिकोपसंहारे पत्रा १४) ॥

(ख) पत्रा १६०--एवमपि (इति) हारुदृष्ट्याऽपि व्यवहारमुक्त्वा नैरुक्तदृष्ट्या प्रत्यक्षमिन्द्रवृत्रव्यवहारं दर्शयन्नाह--

"तद् वा एते देवा इति"।

अत्र च वृत्रह आदित्योऽभिप्रेतः। वक्ष्यति हि "तद्वा ह एष एवेन्द्रो य एष तपति"।

तस्य वृत्रं हनिष्यता यज्ञमिदमुपायभूतं ......

(ग) पत्रा ७१--आधिदैविकं सूक्ष्मार्थं दर्शयति।

(५) उपनिषद् तथा आरण्यक (प्रायः) मन्त्रों के आध्यात्मिक अर्थ का ही प्रतिपादन करते हैं। उन में तो इस विषय के अत्यधिक प्रमाण मिलते हैं। यहां केवल तै० आ० का एक स्थल ही दिया जाता है—

तै० आ० भ० भास्कर भा० पृ० १०२-१०३।

इन्द्रः परमेश्वरः। मेधातिथिराग्निः। अहल्या वाक्। कुशिकः आग्निः॥ ऐतिहासिकास्त्वाहुः॥...... ॥

इस प्रकार ब्राह्मण तथा आरण्यकों की परम्परा में भी इन इतिहासपरक शब्दों का अर्थ नित्य पदार्थों में लगाया गया है। यही संक्षेप से दिखाना हमारा लक्ष्य था। इस विषय की अतीव मनोग्राही व्याख्या वेदों के प्रौढ़ विद्वान् श्रद्धास्पद श्री पं० शिवशङ्कर जी कृत वैदिकेतिहासार्थनिर्णय में देख सकते हैं। यहां निरुक्त से सम्बन्ध रखने वाली बात ही हम ने केवल लिखी॥

यास्क के अनुवर्ती नैरुक्ताचार्यों की ऐतिहासिक परिभाषा का स्वरूप

यास्क के पश्चात् अनेक आचार्यों ने निरुक्त का व्याख्यान किया इस के अनेक प्रमाण मिलते हैं। सामान्यतया प्रसिद्धि तो इतनी ही है कि दुर्ग ने निरुक्त पर टीका लिखी। परन्तु अब विविध महानुभावों की खोज से इस विषय के लगभग ६-७ आचार्यों का ज्ञान हमको प्राप्त हो रहा है। जो निम्न प्रकार हैं—

१—निरुक्त वार्त्तिक
२—वर्वर स्वामी (देखो स्कन्द निरुक्त भाष्य)
३—स्कन्द-महेश्वर
४—दुर्ग
५—श्रीनिवास (देखो देवराज यज्वा निघण्टु भाष्य)
६—नागेशोध्दृत निरुक्तभाष्य (देखो वैयाकरण भूषण)
७—वाररुच निरुक्तसमुच्चय

इन नैरुक्त प्रक्रिया के आचार्यों का हम को इस समय तक पता लगा है अन्य भी इस प्रक्रिया पर न जाने कितने ग्रन्थ लिखे गये होंगे। परन्तु काल के चक्र और हम भारतवासियों के आलस्य प्रमाद के कारण न जाने कितने ग्रन्थ नष्ट हो गये तथा इस समय भी पर्याप्त प्रयत्न न होने पर नष्ट होते जा रहे हैं। महाभाष्य पर सब से प्रथम जो ग्रन्थ लिखा गया वह भर्तृहरि की टीका है जिस का असली हस्त लेख जर्मनी में हैं। उस के फोटो भारतवर्ष में भी एक दो स्थानों में हैं। उस के पृ० ४२ पर निम्न पाठ है—

(८) "निरुक्ते त्वेवं पठ्यते। विकारमस्यार्येषु भाषन्ते इति। तत्रायमर्थः क्रियते। अच् प्रत्ययान्तस्य यो विकार एकदेशस्तमेव भाषन्ते न शवतिं सर्व-प्रत्ययान्तां प्रकृतिमिति॥"

इस उदाहरण से भी स्पष्ट है कि भर्तृहरि किसी निरुक्त के भाष्य को लक्ष्य में रख कर ही "तत्र अयमर्थः क्रियते......" ऐसा लिखते हैं। इस से यास्क के पश्चाद्वर्त्ती नैरुक्त आचार्यों की संख्या ८ हो जाती है। इन सब आचार्यों के ग्रन्थ यदि मिल जावें तो यह निश्चय से कहा जा सकता है कि वेद विषयक अनेक रहस्य खुलें। तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज की धारणाओं के लिए अधिक से अधिक प्रमाण मिलें॥

इन सब के उदाहरण हम प्रकृत विषय में नहीं दे सकते क्योंकि जब ग्रन्थ ही उपलब्ध नहीं तो उदाहरण कहां से दिये जा सकते हैं॥

जो ग्रन्थ मिलते हैं वह तीन हैं। प्रथम वररुचि आचार्य का निरुक्तसमुच्चय द्वितीय स्कन्द स्वामी तृतीय दुर्ग॥

आचार्य स्कन्द स्वामी वर्त्तमान में उपलब्ध होने वाले वेद-भाष्यकारों में सर्वतः प्रथम हैं। अतः ऐसे योग्य आचार्य के निरुक्त भाष्य को हमें अधिक आदर

और सम्मान की दृष्टि से देखना होगा। तथा हमारे प्रकृत विषय में जितनी ज्वलन्त प्रमाणों से युक्त सामग्री हमें स्कन्द के निरुक्त भाष्य में मिलती है इतनी कहीं नहीं। इन से पूर्ववर्ती प्राचीन आचार्य वररुचि के "निरुक्त समुच्चय"—जिस को स्वयं स्कन्द ने उद्धृत किया है—का प्रमाण भी हम पीछे प्रस्तुत करेंगे ॥

स्कन्द स्वामी का काल सन् ६३० निश्चित किया जाता है। दुर्ग के विषय में भिन्न २ मत हैं। पर हम दुर्ग के प्रमाण स्कन्द तथा वररुचि से पीछे ही देंगे ॥

स्कन्द स्वामी और वेद में इतिहास

आचार्य स्कन्द स्वामी की निरुक्त की टीका पंजाब विश्वविद्यालय की ओर से सम्पूर्ण छप चुकी है जिस के फ़रमें मेरे पास हैं। मैं कह सकता हूं यदि उक्त ग्रन्थ मुझे न मिला होता तो मैं निरुक्त सम्बन्धी अपनी सम्पूर्ण धारणाओं को इतना बल पूर्वक इस रूप में आप सज्जनों के सम्मुख न रख सकता ॥

जसि देवापि और शन्तनु की कथा को लेकर विदेशी तथा एतद्देशी विद्वान् भ्रम में पड़ जाते हैं जैसा कि इस लेख के आरम्भ में दर्शाया जा चुका है—इस प्रकरण का कैसा मनोरञ्जक व्याख्यान स्कन्द स्वामी करते हैं—

(क) पृ० II ७३ "अथवा ऋष्टिः रेषणा हिंसा च कामादीनाम्, अन्तश्चरश्शत्रूणां सेनासमुदायः, स चेन्द्रियाणाम्। एतदुक्तं भवति-विषयाभिलापमुख्यात् कामादिचित्तमलरोषप्रधाना सेना इन्द्रियग्रामो यस्य, दूषिता वा प्रेषिता वा गता पराङ्मुखीभूता प्रत्याहारेण विषयेभ्य इन्द्रियसेना यस्य"

अर्थात्—ऋष्टिषेण उस का नाम है जिस की इन्द्रियां विषयों से पृथक् हों।

(ख) पृ० II ७७ "नित्यपक्षे ऋग्द्वयस्यान्यदर्थयोजना—आर्ष्टिषेणः ऋष्टिषेणो मध्यमं तत्रभवत्वाच्चार्ष्टिषेणो विद्युत्। तस्य पार्थिवात्मावस्थितस्य होतृत्वेन देवापित्वम्। शिष्टो मन्त्रः पूर्ववद् योज्यः" ॥

अर्थात्—नित्यपक्ष में दोनों ऋचाओं की नित्यपक्ष में अर्थ की योजना करनी चाहिए जो निम्न प्रकार है—ऋष्टिषेण मध्यम का नाम है। उस में रहने वाला मध्यमस्थानी हुआ आर्ष्टिषेण सो नाम विद्युत् का है। वह जब पार्थिवरूप से अर्थात् पृथिवी में वर्त्तमान होता है तब उस का होता रूप से देवापित्व देवापिपन होता है। शेष मन्त्र की योजना पूर्ववत् कर लेनी चाहिए ॥

(ग) पृ० II ७७ देवापि र्विद्युत् । शन्तनुरुदकम् वृष्टिलक्षणम् । यत् यदा देवापिर्वैद्युतः शन्तनवे वृष्टिलक्षस्योदकस्यार्थाय, पुरोहितः पूर्वं हि विद्योतते पश्चादुदकं ······पूर्ववद् योज्यम् ॥

अर्थात्—देवापि यहां विद्युत् का नाम है शन्तनु उदक=जल का नाम है। वृष्टि रूप जल विद्युत् से ही बरसता है। इस देवापि विद्युत् को मन्त्र में पुरोहितः लिखा है। इस को स्कन्द स्वामी बताते हैं—पूर्वं हि विद्योतते पश्चादुदकम्। पहले विद्युत् चमकती है तब वर्षा होती है, अतः देवापि-विद्युत् पुरोहित कहलाता है। ······आगे पूर्ववत् योजना कर लेनी चाहिए ॥

कैसी हृदयग्राही योजना है ॥

(घ) पृ० II ७८ अथवा कश्चिद् राजा यजमानोऽनावृष्ट्या क्षतसेन ऋष्टिषेण उच्यते" अर्थात् जिस राजा की सेना अनावृष्टि से हत हो जावे उस को ऋष्टिषेण कहना चाहिए ॥

देवापि-शन्तनु की सारी कथा का नित्य अर्थ की योजना स्कन्द स्वामी ने दर्शाई। जिस से वेद में इतिहास का निरुक्तकार यास्क का क्या स्वरूप है यह भली भांति ज्ञान हो गया। परन्तु एक इस कथा की योजना सङ्गति (जिस को आज कल के हतबुद्धि लोग खींचातानी बतलाते हैं) लग जाने से सम्पूर्ण निरुक्त शास्त्र की कथाओं यद्वा वेद में आये हुए ऐसे सर्व स्थलों का तो समाधान नहीं हो जायगा। ऐसी आशङ्का को मन में रख कर ही आचार्य स्कन्द स्वामी ने सुहृद् हो कर इतिहास की परिभाषा का स्वरूप कैसे उत्तम शब्दों में दर्शाया है—

(ङ) पृ० II ७८ "एवमाख्यानस्वरूपाणां मन्त्राणां यजमाने नित्येषु च पदार्थेषु योजना कर्त्तव्या। एष शास्त्रे सिद्धन्तः। तथा च वक्ष्यति। तत् को वृत्रो मेघ इति नैरुक्ताः इत्यादि। मध्यमञ्च माध्यमिकां च वाचम् इति नैरुक्ताः। औपचारिको ऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयः। परमार्थेन तु नित्यपक्ष इति सिद्धम्" ॥

अर्थात् इसी प्रकार जिन जिन मन्त्रों में आख्यान-इतिहास का स्वरूप वर्णन किया गया है। उन सब मन्त्रों की यजमान परक—अथवा नित्य पदार्थों में योजना कर लेनी चाहिए। यह निरुक्त शास्त्र का सिद्धान्त है। जैसाकि आगे आचार्य (यास्क) कहेंगे—वृत्र कौन है? नैरुक्तों के मत में वृत्र का अर्थ है मेघ।

(सरण्यू से एक जोड़ा पैदा हुआ-यम और यमी) ये यम और यमी नैरुक्तों के मत में मध्यम (विद्युत्) और माध्यमिक वाक् का नाम है। ऐतिहासिकों के मत में इस को यम यमी कहा गया है॥ इत्यादि

मन्त्रों में इतिहास-आख्यान का सिद्धान्त औपचारिक अर्थात् गौण है। वास्तव में तो नित्यपक्ष ही मन्त्रों का विषय है॥

हमारे विचार में इस से बढ़ कर क्या साक्षी हो सकती है। केवल देवापि और शन्तनु को विद्युत् और जल बता कर इन मन्त्रों या सूक्त की ही सङ्गति नहीं दिखाई अपि तु सारे निरुक्त शास्त्र का सिद्धान्त इस विषय में प्रतिपादित कर दिया। "एष शास्त्रे सिद्धान्तः" "परमार्थेन तु नित्यपक्ष इत्येव सिद्धम्" क्या ये कुछ भी टिप्पणी की अपेक्षा रखते हैं॥

२—निरुक्त समुच्चय

अत्यन्त प्रसन्नता तथा आश्चर्य की बात है कि वररुचि आचार्य के हस्त लिखित ग्रन्थ ms. "निरुक्त समुच्चय" जिसका मैंने ऊपर वर्णन किया है उस में भी आचार्य स्कन्द स्वामी के उपर्युक्त शब्द पूर्व से ही सर्वथा एक जैसे मिलते हैं। यह ध्यान रहे कि इस निरुक्त समुच्चय ग्रन्थ को स्कन्द स्वामी ने उद्धृत किया है—लेख निम्न प्रकार है—

हस्तलेख पृ० १४२

"औपचारिको ऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयो नित्यत्वविरोधात्। परमार्थेन तु नित्यपक्ष एव इति नैरुक्तानां सिद्धान्तः"

अर्थात्—मन्त्रों में इतिहास औपचारिक (गौण) है। क्योंकि इतिहास मानने से वेद के नित्यत्व में विरोध हो जायेगा। परमार्थ से तो नित्यपक्ष ही ठीक है यह नैरुक्तों का सिद्धान्त है॥

सर्वथा वही स्कन्द स्वामी जैसे ऊपर वाले शब्द हैं जैसे दोनों ने सम्मति कर के ही लिखा हो यह है वेद में इतिहासविषय की नैरुक्तों की परिभाषा का

स्वरूप इन दोनों प्रमाणों से सिद्धान्त रूप से ऐतिहासिक पक्ष का औपचारिकत्व गौणत्व सूर्य के प्रकाश की भांति सिद्ध है ॥

हम समझते हैं पक्षपात रहित विद्वानों को नैरुक्तों के इस सिद्धान्त को मानने में यत् किञ्चित् भी ननु नच न होगी। हां जो इस पर भी न मानें तो उस में तो कहा ही है—

"ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति" ॥

अब हम विद्वानों के मनोरञ्जनार्थ इन दोनों ग्रन्थों के आवश्यकीय कुछ स्थल और रख देते हैं, जिस से यदि कोई कहे कि न जाने एक आध स्थल प्रक्षेप ही हो गया हो या कुछ और—इस विचार को भी कुछ स्थान न रह जावे।

आचार्य वररुचि के शेष स्थल

(क) ऊपर वाले उदाहरण से पूर्व "ऋ० १०-९५-१४ सुदेवोऽद्य" के व्याख्यान में ॥

"एवमितिहासपक्षे योजना। नैरुक्तपक्षे तु पुरुरवा मध्यमस्थानः वाय्वादीनामेकत्वात्, पुरु रौतीति पुरुरवाः उर्वशी विद्युत्...... उरु विस्तीर्ण-मन्तरिक्षं अश्नुत इति उर्वशी वर्षाकाले विद्युत्। यहां पुरुरवा को मध्यमस्थानी, उर्वशी को विद्युत बताया ॥ पृ० १४१

(ख) "ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां...... ऋ० १०-१०-१ ॥"

प्रथमं तावदैतिहासिकमतानुसारेण मन्त्रो व्याख्यायते...... एवमैति-हासिकपक्षे योजना। नित्यपक्षे तु [मध्यमं च माध्यमिकां च वाचमिति नैरुक्ताः यमं च यमीं चेत्यैतिहासिकाः। निरु० १२-१०] यमी मध्यमस्थाना वाक्। ✓ यमश्च मध्यमस्थानः। सा यमी वर्षाकाले मध्यमस्थानमाभिमुख्येन सहार्यं सहस्थानयोगात्...... एवं नित्यत्वाविरोधेन योज्यम् ॥ पृ० १४६

अर्थात् यम-यमी मध्यमस्थानी हैं। वेद के नित्यत्व में विरोध न आवे इस प्रकार योजना कर लेनी चाहिए ॥

(ग) "अर्थाभिव्यक्त्यर्थमस्यां प्रथमं तावदाख्यानं प्रस्तौति ॥" पृ. १३२

अर्थ को स्पष्ट करने के लिए आख्यान-इतिहास प्रस्तुत करते हैं ॥ यह सब प्रमाण भी आचार्य वररुचि की वेद में इतिहास की परिभाषा-भावना के स्वरूप

को विस्पष्ट दर्शा रहे हैं ॥ आचार्य स्कन्द स्वामी के इस विषय के अनेक स्थलों को इस समय लेख बढ़ जाने के कारण छोड़े देते हैं ॥

स्कन्द स्वामी के शेष स्थल

स्कन्द स्वामी के शेष कुछ आवश्यक स्थल और देते हैं—

'गङ्गा' के उपर्युक्त देवापि-शन्तनु प्रकरण पर हमने संक्षेप से स्कन्द स्वामी का समाधान दिया। इस विषय पर कभी फिर विशेष रूप से विचार किया जायेगा।

अब इस प्रकरण के आरम्भ में दिये हुए पूर्वपक्ष वाले लेख के दूसरे स्थल की "प्रियमेधवदत्रिवत् ......" को उठाते हैं जिस में पूर्वपक्षी लेखक महोदय तथा ऐसे ही अन्य विदेशीय तथा एतद्देशीय विद्वान् कहते हैं कि "हमें यह अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिए कि इस मन्त्र में आये हुए सब (प्रियमेध, अत्रि, जातवेद, विरूप, आङ्गिरस, प्रस्कण्व) नाम यास्क के अनुसार ऋषियों के ही हैं"॥

सो इस पर हम स्कन्द स्वामी का लेख ही उद्धृत करते हैं—

(१) पृ० II १८० "नित्यपक्षे तु सततप्रवृत्तयज्ञः कश्चिद् यजमानः प्रियमेध उच्यते तथा भृग्वादयोऽपि यजमानविशेषा एव। भृगुः पञ्चतपः प्रभृतिना तपसा भृज्यमानोऽपि न देहे। गार्हपत्योपायित्वादिना अङ्गारेषु वसतीत्याङ्गिराः। अदनाद् भक्षणाद् रागादीनां दोषाणामत्रिः। विविधं खननाद् वेदार्थवस्तूनां वैखानसः। वैरूप्यात् तपसो विरूपः। यथैतेषामृषीणां, दर्शनाद् ऋषयः। प्रस्कण्वः कण्वस्य मेधाविनः पुत्रः। एक वाक्यता तु पूर्ववद् योजनीयेति"॥

अर्थात्—नित्यपक्ष में प्रियमेध किसी यज्ञ में निरन्तर प्रवृत्त रहने वाले यजमान का नाम है। इसी प्रकार भृगु आदि भी यजमान विशेष ही हैं। गार्हपत्य अग्नि के उपाय में लगने के कारण अङ्गारों में रहने से (यजमान) अङ्गिराः। रागादि दोषों के खा जाने (नष्ट कर देने) के कारण अत्रिः। वेद के अर्थ रूप तत्त्वों की खोज करने वाला होने के कारण वैखानस। तप की विरूपता से विरूप। जैसे इन ऋषियों का। (वेदार्थादि का) दर्शन करने से ऋषिः। (यह सब ऊपर यजमान विशेष कहे)। प्रस्कण्व का पुत्र, कण्व नाम है मेधावी बुद्धिमान् का, उस का पुत्र।

एक वाक्यता पूर्ववत् लगा लेनी चाहिये ॥

कैसा उत्तम अर्थ है । कहां इतिहास और कहां यह उत्तम अर्थ । कहां पूर्व पक्षी की घोषणा कि यास्क के यह ऋषियों के ही नाम हैं। देखिये ऊपर वाले लेख में तो स्पष्ट "यजमानविशेषाः" ही लिखा है । इसी से शास्त्र कहता है—"बिभे-त्यल्पश्रुताद् वेदः" ॥

यहां हम एक बात प्रसङ्गतः और कहना आवश्यक समझते हैं वह यह कि ऐसा अर्थ स्वामी दयानन्द ने किया होता तो और तो और कोई २ मनचले विद्वान् कहलाने वाले आर्य भी झट स्वामी दयानन्द पर खींचातानी का दोष आरोपित कर देते । ऐसे लोगों की पर्याप्त विद्या न होने से अथवा अनार्ष पद्धति का ही अनुसरण करते रहने से बुद्धि भ्रान्त हो जाती है । जब इन को सायण या किसी दूसरे का अर्थ दिखा दिया जाता है तब ऐसे लोग एक दम शान्त हो जाते हैं। उस समय इन लोगों को उसी अर्थ में (जिस की ओर आंख उठा कर भी नहीं देखते थे) सुसङ्गत, सुसम्बद्ध, सोपपन्नादि प्रायः सम्पूर्ण गुण दीखने लग जाते हैं !!! ऐसे लोगों को वेदार्थ क्या कभी समझ में आ सकता है ? चाहे ऐसे लोग आर्य समाज में कुछ ही बने रहें पर इन से आर्य समाज का लेश मात्र भी लाभ नहीं हो सकता । हां हानि तो अकथनीय हो ही रही है ॥

इस ऊपर वाले "प्रियमेधवत्...... ऋ० १-४५-३॥" मन्त्र का ऋषि दयानन्द का किया हुआ अर्थ भी दिये देते हैं—आश्चर्य और प्रसन्नता की बात है—स्वामी जी महाराज ने इस मन्त्र का अर्थ लगभग वैसा ही किया है जैसा कि आचार्य स्कन्द स्वामी ने—

"(प्रियमेधवत्) प्रिया तृप्ता कमनीया प्रदीप्ता मेधा बुद्धिर्यस्य तेन तुल्यः । (अत्रिवत्) न विद्यन्ते त्रय आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकास्तापा यस्य तद्वत् (जातवेदः) यो जातेषु पदार्थेषु विद्यते सः (विरूपवत्) विविधानि रूपाणि यस्य तद्वत् (अङ्गिरस्वत्) योऽङ्गानां रसः प्राणस्तद्वत् (महिव्रत) महि महद् व्रतं शीलं यस्य सः (प्रस्कण्वस्य) प्रकृष्टश्चासौ कण्वो मेधावी (श्रुधी) श्रृणु......। यास्कमुनिरेवमिमं मन्त्रं व्याख्यातवान्...."

यह अर्थ स्कन्द स्वामी के अर्थ के समान ही है । अत्रि का अर्थ कोई ऋषि विशेष नहीं अपितु जिस ने रागादि दोषों का नाश कर दिया हो जिस में ये दोष

न रहें। यद्वा जिस के तीनों प्रकार के दुःख न रह जावें वह अत्रि। कण्व किसी ऋषि विशेष (proper name) का नाम नहीं अपितु मेधावी का नाम है ऐसा अर्थ दोनों आचार्यों ने किया है ॥

निरुक्त के इस स्थल को अन्य प्रकरणों के समान आज कल के प्रायः सभी अध्ययन अध्यापन कराने वाले "ऋषि विशेष" ही पढ़ते पढ़ाते हैं। उसी का अर्थ स्वामी जी ने "न विद्यन्ते त्रय आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकास्तापा यस्य तद्-वत" अर्थात् जिस के आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीनों ताप न रहें वह अत्रि कहलाता है ॥ स्कन्द स्वामी ने इसी अत्रि शब्द का अर्थ "अदनाद् भक्षणाद् रागादीनां दोषाणां अत्रिः" अर्थात् जिस ने रागादि दोषों का अदन, भक्षण अर्थात् इन को खा लिया, नष्ट कर दिया हो, जिस के रागादि दोष न रहें वह "अत्रि" कहलाता है ॥

इस मन्त्र में हम बलपूर्वक ऐसे व्यक्तियों से पूछते हैं—कि "हे जातवेदः" में आद्युदत्त स्वर विना दयानन्द की शरण आये कभी सिद्ध नहीं हो सकता। इस में निघात स्वर की प्राप्ति है परन्तु यहां है आद्युदत्त। किसी को हौसला हो तो सिद्ध कर के दिखावे ॥

"अत्रि" आदि का जो अर्थ दिखाया है वह यह है यौगिक प्रक्रिया की कृपा जिस का आश्रयण कर के आचार्य दयानन्द ने समग्र संसार को उपकृत किया। और देखिये! स्वामी जी ने निरुक्त का भी वही स्थल उद्धृत किया है जिस में आज कल के विद्वान् कहलाने वालों को इतिहास ही दीखता है। दयानन्द को उसी में इतिहास की गन्ध भी नहीं दीखती। इसी से हम उस महात्मा दयानन्द को ऋषि, प्रत्यगदर्शी कहते हैं। इसी से हम उस को अपनी नौका का लङ्गर मानते हैं ॥

"व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्"

हम जितना भी दयानन्द का अधिक अध्ययन करेंगे उतना ही अधिक उन को पायेंगे। स्कन्द के अन्य स्थल भी मनोरञ्जक हैं अति संक्षेप से वह भी दे देते हैं—

(२) पृ० II ९३

"सर्वे इतिहासाश्चार्थवादमूलभूताः। ते चान्यपरा विधिप्रतिषेधशेष-भूताः। अतस्ताननादृत्य स्वयमविरुद्धं नित्यदर्शनमुपोदवलयन्नाह मेघ इति

............तत्र मुख्ययुद्धसम्भवाभावादौपचारिकी उपमालक्षणार्थेन युद्ध-वर्णना। किं सादृश्यम् ? सङ्घर्षः । तस्मादसति युद्धे कल्पनेषा, तथा च कल्पितरूपा मन्त्रवर्णा मन्त्रलिङ्गाः ॥"

अर्थात् सम्पूर्ण इतिहास अर्थवाद मूलक हैं। वह अन्य परक होते हुए विधि और प्रतिषेध के शेष हैं। इसी से (यास्क ने) इन को आदर न दे कर स्वयं वेद से अविपरीत सिद्धान्त को लक्ष्य में रख कर कहा कि नैरुक्तों के पक्ष में वृत्र का अर्थ मेघ है॥

यहां मुख्य युद्ध की सम्भावना के अभाव में युद्ध की औपचारिक अर्थात् उपमारूप से कल्पना है। उस में सादृश्य क्या है? सो सङ्घर्ष का होना ही सादृश्य है। इस लिए युद्ध न होते हुए भी यह युद्ध की कल्पना है। इसी प्रकार अन्यत्र जहां भी मन्त्रों का वर्णन हो वहां मन्त्र के लिङ्गानुसार कल्पना कर लेनी चाहिए॥

(३) पूर्वपक्षी ने पृ० ३० पर "त्रित" को भी इतिहास बताया है—प्रकृत मन्त्र निम्न प्रकार है—

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो ।

वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ऋ० १-१०५-८ ॥

पूर्वपक्षी कहता है कि निरुक्त के इस मन्त्र के व्याख्यान में यास्क ने लिखा है—

"त्रितं कूपेऽवहितमेतत् सूक्तं प्रतिबभौ" ।

स्कन्द स्वामी लिखते हैं—पृ० २१०-२११

"नित्यपक्षे त्रितो नाम शुक्लशब्दलक्षणः, कर्मपाशैस्त्रिः स्वर्ग नरक मर्त्येषु बद्धः कश्चिद् क्षेत्रज्ञः । कर्मज्ञानसमुच्चयाभावादपवर्गमनाप्नुवन् नरके घटीयन्त्रवद् घटितेसंसारे बम्भ्रम्यमाणः परिदेवयाञ्चक्रे । सन्तापयन्ति मां पुनर्मातुरुदरे मग्नमशुचिप्रस्तरके पुरीपतन्तुजालके यकृल्लोमावष्टम्भादेर्विभक्तोच्छ्वासं । बीभत्समानमसृक् पङ्कमध्यशायिनं तमसि निरालोके संवर्तमानमभितो मातुः पर्शव इव तत्रस्थस्य च मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः सम्यग् दर्शन विषयाः असम्पद्यमाना कामाः । परं समानयोज्यम् ....."

भाव यह है कि नित्यपक्ष में त्रित नाम है किसी "क्षेत्रज्ञ" (जीव) का। जो

कर्म पाशों के द्वारा स्वर्ग, नरक और मर्त्य लोक इन तीनों में तीनों बार बंधता है। (अर्थात् आता जाता है) कर्म और ज्ञान के समुच्चय के न होने से मोक्ष को प्राप्त न होता हुआ घटी यन्त्र की तरह सदैव चलते रहने वाले संसार में भटकता हुआ दुःखित हुआ। अपवित्रता से पूर्ण, मल के आगार, माता के उदर में मग्न हुए यकृल्लोमादि में फंसे, जिस का श्वास भी ठीक अवस्था में नहीं, गर्हा, रक्त-रूपी पङ्क में फंसे, घोर अन्धकार में पड़े, मुझ को असम्पद्यमान (अप्राप्त) कामनायें मूष-चूहे की भांति काटती चली जा रही है……इत्यादि आगे पूर्ववत् योजना कर लेनी चाहिए" ॥

यहां "त्रित" का अर्थ माता के गर्भ में पड़ा जीव, ऐसा अर्थ स्कन्द स्वामी करते हैं ॥

(४) अब हम इन प्रमाणों को छोड़ते हैं केवल तत् तत् शब्द का अति संक्षेप से निर्देश करना ही उपयुक्त होगा—

(क) पृ० II २५३ पर "अदितिः" का अर्थ "प्रकृतिः" किया है ॥

(ख) पृ० II २६४ "यम" को आदित्य और "यमी" को "रात्रि" लिख कर यम यमी सूक्त को सङ्गति लगाई ॥ यम यमी सूक्त के इस प्रकरण के सम्बन्ध में स्कन्द स्वामी का लेख निम्न प्रकार है—

"नित्यपक्षे तु काचिद् ब्राह्मणी पत्यौ प्रव्रजिते कामार्त्ता प्रब्रवीति इति योज्यम्" ॥

अर्थात्—नित्यपक्ष में इस यम यमी सूक्त में कोई ब्राह्मणी पति के परि-व्राजक होने पर कामार्त्त हुई कहती है—ऐसी योजना कर लेनी चाहिए ॥

यहां इतना ध्यान रहे कि यहां का पाठ कुछ व्यस्त सा है। हम ने मुद्रित पाठ के अनुसार ही लिखा है। अन्य हस्तलेख मिलने पर इस पर और विचार हो सकता है। परन्तु ऊपर भो मन्त्र यम यमी का ही है अतः हमने इस को यहां लिखा है। विद्वान् इस पर और विचार करें ॥

(ग) पृ० II ३४५-३४६ पर "उर्वशी" का अर्थ "विद्युत्" किया है ॥

(घ) पृ० II ४२४ पर "कक्षीवन्तं य औशिजः" पर निम्न प्रकार लेख है—

"न ऋषिनाम। न चोपमानम्। किं तर्हि? आत्मनो विशेषणं। उशिक् शब्दोऽपि मेधाविनाम……उशिजश्च मेधाविनः कण्वस्य पुत्रः"।

अर्थात्—कक्षीवान् ऋषि का नाम नहीं । और नहो उपमा है । तो फिर क्या है ? आत्मा का विशेषण है । उशिक् शब्द भी मेधावि का नाम है । उशिग् मेधावी कण्व बुद्धिमान् का पुत्र" ॥

स्कन्द स्वामी के इन सब उदाहरणों से यह स्पष्ट सिद्ध है कि निरुक्त में जो इतिहास है वह सब औपचारिक है, गौण है । अनित्य व्यक्तियों (proper names) का इतिहास नहीं । यही मत "निरुक्त समुच्चय" का भी है ॥

३—दुर्गाचार्य और इतिहास

दुर्ग ने यद्यपि निरुक्त के अनेक स्थलों में ऐतिहासिक पक्ष की पर्यालोचना बहुत उत्तम रीति से की है । परन्तु जिस स्पष्टता से आचार्य स्कन्द स्वामी ने नैरुक्तों की ऐतिहासिक परम्परा को सूर्य के प्रकाश की भांति व्यक्त कर दिया है । वास्तव में उस को देख कर ही अब विज्ञ पाठकों को आचार्य दुर्ग की इतिहास विषय की धारणा को अवगत करने में कुछ भी कठिनता न होगी ॥ यद्यपि दुर्ग की टीका में बहुत ही उत्तम उत्तम स्थल विद्यमान थे परन्तु अब तक इतनी प्रबलता से वेद के इतिहास पक्ष का समाधान विस्पष्ट रीति से नहीं हो सका इस बात को निरुक्त के पढ़ने पढ़ाने वाले सभी अनुभव करेंगे ॥

हमारे विचार में यहां इतना और ध्यान रहे कि यद्यपि स्कन्द और दुर्ग अपने अपने काल की उन रूढ़ियों से बच नहीं सके, जो उन के काल में वेदार्थ के विषय में प्रचलित थीं । यह बात इन के स्थान स्थान पर मन्त्रार्थ के देखने से ही ज्ञात हो जाती है । परन्तु यह सब होने पर भी हम इतना अवश्य कहेंगे कि इन दोनों आचार्यों के काल तक निरुक्त की परम्परा कुछ सीमा तक उत्तम रीति से चली आ रही थी । मेरे विचार में तो स्कन्द ने १०० में ७५ हमारे समाधान कर दिये हैं । लगभग इतना ही दुर्ग ने भी हमारे लिए निरुक्त की प्रक्रिया का मार्ग साफ़ कर दिया है । शेष उन की प्रत्येक धारण को तो हम भी सर्वांश में नहीं मानते । परन्तु इन के इतने महान् उपकार के लिए हमें इन का अतीव कृतज्ञ होना चाहिए ॥

अब सज्जनों के सन्मुख इतिहास विषय की दुर्ग की धारणा रखता हूं—

(क) "तत्र एतस्मिन्नर्थे इतिहासमाचक्षते आत्मविदः । इतिवृत्तं पर-

कृत्यर्थवादरूपेण । यः कश्चिद् आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिको वार्थ आख्यायते दिष्ट्युदितावभासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते। स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो हि नित्यमविवक्षितस्वार्थः तदर्थप्रतिपत्तृणामुपदेशपरत्वात्" ॥

निरु० १०-२६

अर्थात् यह ऋचा आत्मगति को कहती है इस विश्वकर्मा भौवन के विषय में आत्मज्ञानी इतिहास बतलाते हैं परकृति अर्थवादरूप से इतिवृत्ति का व्याख्यान करते हैं। जो कोई भी आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक अर्थ (दिष्ट्यु-दितावभासनार्थं) ज्ञान के उदय (प्रकाश) होने के लिए प्रख्यात किया जाता है वही इतिहास कहता है……

सो यह सब प्रकार का इतिहास निःसंशय नित्य तथा अविवक्षितस्वार्थ होता है अर्थात् अपने मुख्य इतिहासार्थ को नहीं कहता। क्योंकि वह केवल उस अर्थ को जानने वाले लोगों के लिए केवल उपदेश परक (उपदेश मात्र) ही होता है। (वास्तव में वह कोई इतिहास नहीं होता) ॥

(ख) "यथो एतत् पौरुषविधिकैः द्रव्यसंयोगैः इति । एतदपि तादृश-मेव । औपचारिकम्-रूपक मित्यर्थः । यथैव हि आस्यादिकल्पना दृष्टव्यभिचा-रित्वात् ग्रावप्रभृतिषु न सम्भवति, रूपकमात्रं स्तुत्यर्थ सङ्कल्पतो बाह्वादिकार्य-सिद्धिः । एवं हरिरथजायादिस्तुतयो रूपकमात्रमिति…… न चास्यां स्तुतौ यथाभूतार्थत्वोपपत्तिरस्ति । असम्भात् । कथमसम्भवः ? नह्युदकात्मिकाया नद्या वहन्त्या रथे ऽवस्थानं सम्भवति………… तदेवमादिष्वसम्भवात् मुख्यार्थकल्पनायाः सर्वत्र रूपकप्रवादाः स्तुतय इत्युपेक्ष्यम्" ॥

अर्थात् मूल निरुत में जो "यथो एतत पौरुषविधिकैः द्रव्यसंयोगैः" यह कहा कि पुरुष सदृश अङ्गों से स्तुति की जाती है अतः ये देवता चेतन हैं…… यह भी वैसा ही है। अर्थात् औपचारिक-रूपक हैं। जिस प्रकार ग्रावादि में आस्यादि (मुखादि) की कल्पना सम्भव नहीं, अपि तु स्तुति के लिए रूपक मात्र होती है, कल्पना से ही बाहु आदि कार्यों की सिद्धि होती है न कि वास्तविक (शृणोत ग्रावाण इत्यादि में)। इसी प्रकार हरि के रथ, जायादि की स्तुतियें रूपक मात्र हैं (वास्तविक नहीं)……इस स्तुति में यथाभूतार्थ (सच मुच) ऐसा कथन नहीं। क्यों ? असम्भव होने से। असम्भव कैसे ? जल रूप चलती हुई नदी का रथ में बैठना सम्भव ही नहीं" ॥

कितना स्पष्ट लेख है। जिस पर कुछ भी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। यहां इतना और ध्यान रहे कि महाभाष्यकार पतञ्जलि भगवान् ने "हेतुमति च" सूत्र के भाष्य में

"अचेतनेष्वचेतनवदुपचाराः" इस वार्त्तिक में "शृणोत ग्रावाणः" यही उदाहरण दिया है। जिस से यह सब औपचारिक है यह स्पष्ट सिद्ध है। इसी प्रकार शन्तनु के राज्य की १२ वर्ष की अनावृष्टि भी तो असम्भव ही है। अतः वहां भी औपचारिक ही कथन है॥

(ग) "तत्रैवं सति आत्मविद आत्मनि त्रित्वनानात्वे गुणीकृत्य तदङ्गप्रत्यङ्ग भावेन कल्पयित्वैकमात्मानं पश्यन्ति। तथा नानात्वैकत्वे नैरुक्ता इति त्रित्वे। तथा त्रित्वैकत्वे याज्ञिका नानात्वे। एवमेषामविरोधः॥

अस्ति हि शब्दार्थयो वक्तृप्रतिपत्तृवशेन तद् बुद्ध्यपेक्षयान्वयव्यतिरेकाभ्यां वर्त्तितुं शक्तिः। न तु स्वाभाविकमभिधानाभिधेयसम्बन्धमकृतकम प्रच्यावमानावभिधानाभिधेयो जहीतः। न ह्यक्षरवभास्यं प्रत्यवभासनशक्तिरवभास्यस्य चावभास्यमानताशक्ति र्व्यवधानमन्तरेण विहन्यते। नह्यकृतकं स्वयमप्यधीतं को विकल्पते वैदिकानां पदवाक्य प्रमाणानाम्॥

आत्मभावानुशयवशेनात्मविन्नैरुक्तयाज्ञिकाः वेदस्याविपर्यासिनीमप्यध्यात्माधिदैवाधियज्ञविषयानियतां अर्थाभिधानशक्तिं विपर्यासिनीमिव मन्यमानाः परस्परतो विपर्यस्यन्ते।

एतत् सर्वथापि भेदाभेदवर्त्ति देवतासतत्वं यथाग्रहं वक्तृप्रतिपत्तृवशेन प्रख्यातिमुपनयत् स्तुतिरूपकेणात्मनोऽर्थसतत्त्वं तथाभूतं मन्त्रैराविष्क्रियते तदुक्तम्—"तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति" दर्शितञ्चैतन्मन्त्रेण "न त्वं युयुत्से ..." इति।

निष्ठितरूपत्वेन स्वे स्वे विषये ऽध्यात्मादौ परमार्थतया ऐकात्म्ये निष्ठा तदन्तत्वाद् वाचः। तदुक्तम् ...... यतो वाचो निवर्त्तन्ते ......" ॥ नि० ७-६

यह समग्र स्थल बड़ा ही उत्तम है। बहुत लम्बा होने से सम्पूर्ण का अर्थ न कर के भावमात्र ही लिखा जाता है—

आध्यात्मिक नैरुक्त, याज्ञिक आदि पक्षों में परस्पर विरोध नहीं। कथन के प्रकार का भेद मात्र है ......इन वादों में और अर्थ की शक्ति वक्ता और प्रति-

पत्ता (बोद्धा) के बुद्धिवैशद्य के भेद से भिन्न २ है। स्वाभाविक नित्य अकृतक अभिधानाभिधेय सम्बन्ध को शब्द और अर्थ नहीं छोड़ते। आत्मा के अपने २ भावों के अधीन नैरुक्त, आध्यात्मवादी और याज्ञिक लोग वेद की कभी विपरीत (विरुद्ध) न होने वाली आध्यात्म, आधिदैविक, आधियज्ञ विषयक नियम वाली अभिधान शक्ति को (विपर्यासिनीमिव) परस्पर एक दूसरे विरुद्ध सी होती हुई मानते हुए भिन्न २ अर्थों का प्रतिपादन करते हैं॥

"....यह सब (यथाग्रहं) अपने २ ज्ञानानुसार, (वक्तृप्रतिपत्तृवशेन) वक्ता और ज्ञाता की विद्या-शक्ति के भेद से होती है। इसी से (यास्क मुनि ने) कहा—

"तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति"॥

इसी को मन्त्र बताता है। भिन्न २ विषयक मन्त्र होते हुए भी परमार्थ से (प्रधानतया) एक "ब्रह्म" में परिसमाप्ति है। क्योंकि वाणी की परिसमाप्ति भी अन्ततो गत्वा उसी में होती है। जैसाकि उपनिषद् में कहा—

"यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह......" इत्यादि॥

दुर्ग के ये शब्द ऋषि दयानन्द की वेद सम्बन्धी धारणा को पुकार २ कर सर्वांशेन पूर्ण रीति से पुष्ट कर रहे हैं इस को विज्ञ महानुभाव भली प्रकार समझ सकते हैं।

(घ) "ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता......"

इस की व्याख्या में दुर्गाचार्य का लेख निम्न प्रकार है—

"अतश्च दर्शयति मन्त्राणामैतिहासिकोऽप्यर्थ उपेक्षितव्योऽसावपि तेषां विषयः" ॥ नि० १०-१०

अर्थात्—यास्क के "ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता" का यही अभिप्राय है कि मन्त्रों का ऐतिहासिक अर्थ भी होता है, वह भी उन का विषय होता है। यहां 'अपि' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है॥

जिन मन्त्रों का ऐतिहासिक अर्थ दर्शाया जाता है उन का अन्य भी अर्थ है यह दुर्ग के लेख से स्पष्ट है। दुर्ग के शब्दों में मन्त्रों का ऐतिहासिक अर्थ भी होता है यह यास्क मुनि को यहां अभिप्रेत है॥

यहां पर इतना ध्यान रहे कि यह सब इतिहास औपमिक है, तथा नित्य-पदार्थों का वर्णन गौणतया औपचारिक रूप से वर्णित है यह दुर्ग का मत है॥

दुर्ग के शेष स्थल

अब हम दुर्गाचार्य के भिन्न २ उपयोगी स्थल अति संक्षेप से दर्शाते हैं जिन से यह भली प्रकार व्यक्त होता है कि वह वेद में अनित्य व्यक्तियों का इतिहास न मान कर वेद के नित्य अर्थ को मानते हुए नित्य इतिहास का ही प्रतिपादन करते हैं—

(क) 'सरमा' का अर्थ निरुक्त में देवशुनी=देवताओं की कुतिया लिखा है। निरुक्त का लेख इस प्रकार है—"देवशुनीन्द्रेण प्रहिता पणिभिरसुरैः समूदे इत्याख्यानम्" ॥ नि० ११-२५

दुर्ग कहते हैं—इत्याख्यानविद एवं मन्यन्ते। वाक्पक्षे तु चिरकालीन-वृष्टिव्युपरमे कदाचिदाभिनवमेघसंप्लवे सहसैव स्तन-यित्नुमुपश्रुत्य कुत इयं माध्यमिका वाक् चिरेणागतेति विस्मितस्तामसूयन्निव ब्रवीति ......किमिच्छन्ती सरमा...... ......ऋ० १०-१०८-१" ॥

यहां 'सरमा' का अर्थ मध्यमस्थानी वाक् किया है ॥

(ख) "युद्धवर्णा भवन्ति। युद्धे रूपकाणीत्यर्थः। नह्यत्र यथाभूतं युद्धमस्ति। नहीन्द्रस्य शत्रवः केचन सन्ति" ॥ नि० २-१६

(ग) "निरुक्तपक्षे ऋष्टिषेणो मध्यमः......शन्तनवे सर्वस्मै यज-मानाय" ॥ नि० २-१२

(घ) "मन्त्रार्थपरिज्ञानादेव ह्यग्नेराध्यात्माधिदैवाधिभूताधियज्ञेष्व-वस्थानं याथात्मतो दृश्यते ॥ नि० ४-१९

(ङ) उर्वशी का अर्थ विद्युत् पूर्ववत् किया है ॥ नि० ५-१३

(च) "को ऽयमग्निः। आत्मा इत्यात्मविदः।......अविवक्षित-स्थानविशेषो निर्ज्ञाततदभिधानो देवताविशेषो लोकवेदप्र-सिद्धः कर्माङ्गमिति याज्ञिकाः। विवक्षितविशिष्टस्थानकर्मा मध्यमोत्तमाभ्यां ज्योतिर्भ्यामन्यः पार्थिवोऽयमग्निरिति नैरुक्तसमयः।............आत्मवित्पक्षे तु सर्वमभिधान-मात्मार्थमेवेति सर्वावस्थं विभूतितादभाव्यमनुभवतीति सर्वपदव्युत्पत्तिप्रयोजनम्" ॥ नि० ७-१४

अर्थात्—अग्निः कौन है? आत्मविदों के मत में 'अग्नि' का अर्थ है आत्मा। याज्ञिकों के मत में "अग्नि" यज्ञकर्म का अङ्गभूत है। नैरुक्तों के मत में उस को पार्थिव अग्नि कहा गया है।" ...अध्यात्म पक्ष में तो यह सब कुछ कथन उपकथनादि आत्मा के लिए ही है। सब में स्थित हुई 'आत्मा' की विभूति को अनुभव करता है, सब पदों की व्युत्पत्ति का यही प्रयोजन है।

दूसरे शब्दों में 'अग्नि' आदि शब्दों की प्रकृतिप्रत्यय की विविध कल्पना द्वारा व्युत्पत्ति, निर्वचन जो यास्क ने दिखाया है जो इस ग्रन्थ का मुख्य ध्येय है वह इन 'अग्नि' आदि शब्दों से एक "आत्मा" का अर्थ संघटित करने के लिए ही है॥

यहां पर कुछ अविवेकी लोग, व्याकरण तथा निरुक्त की प्रक्रिया को न समझते हुए कहते हैं कि 'अग्नि' शब्द की व्युत्पत्ति में

"अग्निः कस्माद्? अग्रणी भवति। अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते।

अङ्गं नयति सन्नममानः। अक्नोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीविः।

न क्नोपयति न स्नेहयति। ...... इतादक्तात् दग्धाद्वा नीतात्। ......"

नि० ७-१४

इत्यादि यास्क के लेख पर कहते हैं कि यास्क को स्वयं निश्चित नहीं था कि कौन से धातु से अर्थ करूं। सन्देह में अनेक धातु गिना दिये॥

दुर्ग का यह लेख—कि

"सर्वाभिधानमात्मार्थमेवेति सर्वावस्थं विभूतितादभाव्यमनुभवतीति सर्वपदव्युत्पत्तिप्रयोजनम्"॥

अर्थात्—सब पदों की व्युत्पत्ति, निर्वचन का प्रयोजन सब अभिधान (कथन) को एक आत्मा में संघटित करने के लिए हैं॥

यही तो यौगिक प्रक्रिया है। नैरुक्त परम्परा के जानने वाले आचार्य इस को कितना महत्व देते चले आ रहे हैं। इसी को आधार बना कर ऋषि दयानन्द ने तम आच्छादित वेदार्थ को प्रकाशित करके संसार के सामने रखा। इस के बिना और कोई प्रक्रिया हो ही नहीं सकती जिस से वेद का वेदत्व सिद्ध हो सके। सम्पूर्ण निरुक्त इस प्रक्रिया को आधार बना कर ही प्रवृत्त हुआ है। यह हम पूर्व दर्शा चुके हैं॥

(छ) "विश्वानरविद्यायां तावत् "आत्मा इत्यात्मविदः, इन्द्रादित्य, वायु, आकाश, उदक, पृथिव्यादयश्च पृथक् पृथगेव वैश्वानरत्वेन विज्ञायन्ते" ॥ नि० ७-२२

अर्थात्—विश्वानर आत्मवादियों के मत में आत्मा है, इन्द्र, आदित्य, वायु, आकाश, उदक, पृथिवी आदि पृथक् २ विश्वानर रूप से जाने जाते हैं (ब्राह्मणादि ग्रन्थों में)।

(ज) "आत्मस्तुतिरेवेयं सर्वा" ॥ नि० ९-११

"त्रित्वपक्षे तु माध्यमिको यमो माध्यमिकां वाचम्" नि० ११-३४

(झ) ऐतिहासिकपक्षाभिप्रायोऽयमर्थवादः ॥ नि० १२-१५

(ञ) रश्मयो हि विश्वेदेवाः ॥ नि० ३-१२

इत्यादि इतने स्थल हैं कि हम सब को उद्धृत नहीं कर सकते। अन्त में एक विशेष उदाहरण दे कर दुर्ग का विषय समाप्त करते हैं ॥

वेदार्थ में दुर्ग की धारणा

क्या है इस का दिग्दर्शन निम्न लेख से भली भांति हो जाता है—

(६) (क) "तत्रैवं सति प्रतिविनियोगमस्यान्येनार्थेन भवितव्यम्। त एते वक्तुरभिप्रायवशादन्यत्वमपि भजन्ते मन्त्राः। न ह्येतेषु अर्थस्येयत्तावधारणमस्ति। महार्था ह्येते दुष्परिज्ञानाश्च। यथाश्वारोहवैशिष्ट्यादश्वः साधुः साधुतरश्च वहति, एवमेते वक्तृवैशिष्ट्यात् साधून् साधुतरांश्चार्थान् वहन्ति ॥

तत्रैवं सति लक्षणोद्देशमात्रमेवतस्मिञ्छास्त्रे निर्वचनमेकैकस्य क्रियते। क्वचिच्च आध्यात्माधिदैवाधियज्ञोपदर्शनार्थम् तस्मादेतेषु यावन्तोऽर्था उपपद्येरन्, आधिदैवाध्यात्माधियज्ञाश्रयाः सर्व एव ते योज्याः। नात्रापराधोऽस्ति" ॥

(ख) "ईदृशेषु शब्दार्थन्यायसङ्कटेषु मन्त्रार्थघटनेषु दुरवबोधेषु मतिमतां मतयो न प्रतिहन्यन्ते, वयं त्वेतावदत्रावबुध्यामहे" ॥ नि० ७-३१

अर्थात्—ऐसी अवस्था में विनियोग २ के भेद से इसका भिन्न २ अर्थ

होगा । सो यह मन्त्र वक्ता के अभिप्राय भेद से भिन्नता को भी प्राप्त हो जाते हैं। (अर्थात इस में घबराने की कोई बात नहीं) ॥

इन मन्त्रों का बस इतना ही अर्थ है इस की क़ैद नहीं लगाई जा सकती। यह मन्त्र महान् अर्थ वाले अत्यन्त ही दुष्परिज्ञान, बड़े ही परिश्रम, विद्या, योगादि की शक्ति से जाने जा सकते हैं। जैसे सवार २ के भेद से घोड़ा अच्छा और अतीव अच्छा चलने लगता है। इसी प्रकार वक्ता जितना अधिक योग्य और तपस्वी होगा उस के दर्शाये वेदार्थ से भी उतने ही अधिक साधु, और साधुतर अर्थों का प्रकाश होगा। [आज कल के वेदभाष्यकार इस से बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं—क्योंकि स्वयं यास्क ने भी तो कहा है—नह्येषु प्रत्यक्ष-मस्त्यनृषेरतपसो वा। पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्योभवति ॥ नि० १३-१२ ले०] ॥

इस प्रकार निरुक्त शास्त्र में लक्षणोद्देशमात्र (लक्षणों को दर्शाने के लिए सङ्केत मात्र) ही एक २ शब्द का निर्वचन दिखाया गया है। कहीं २ आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधियज्ञ, अर्थों का बोध कराने के लिए शब्दों का निर्वचन दिखाया गया है" ॥

अतः इन मन्त्रों में जितने भी अर्थ उपपन्न (युक्त) हो सकें चाहे वे आध्यात्मिक आधियज्ञादि हों उन सब की ही योजना कर लेनी चाहिये। इस में किसी प्रकार का भी दोष नहीं ॥ दुर्ग का यह लेख कितना स्पष्ट है ॥

"इस प्रकार शब्दार्थ के निर्णय में सङ्कट उपस्थित होने पर जहां पर भी मन्त्रों के दुरवबोध अर्थों को यथावत घटाना होता है वहां बड़े २ बुद्धिमानों की बुद्धियां प्रतिहत नहीं होतीं—नहीं रुकतीं—हम तो यहां पर इतना ही समझ सके हैं ॥"

इस ऊपर के लेख से दुर्ग का वेदार्थ सम्बन्धी हृदय इतना स्पष्ट है कि इस पर कुछ भी लिखने की आवश्यकता नहीं। ऐसा प्रतीत होने लगता है जैसे स्वयं ऋषि दयानन्द जी ही बोल रहे हों। एक २ शब्द में ऋषि दयानन्द जी की वेदार्थ प्रक्रिया की पुष्टि हो रही है ॥

हज़ारों ग्रन्थों को पढ़ कर लगभग ३ हज़ार ग्रन्थों को प्रामाणिक मानने वाले ऋषि दयानन्द की अगाध बुद्धि का परिचय हम साधारण बुद्धि वालों को तभी

होता है जब हमें उन की धारणा के सम्बन्ध में उन से पूर्वाचार्यों का कोई प्रमाण मिल जाता है। हम लोगों की अपनी स्वतन्त्र बुद्धि नहीं अपितु हमने अपनी बुद्धि को इन लोगों के हाथ बेच सा दिया होता है "गतानुगतिको लोकः, न लोकः पारमार्थिकः" ॥ ऋषि दयानन्द में यह बात नहीं थी। उन की हर एक धारणा शास्त्र प्रमाण तथा तर्क के आधार पर थी ॥

उन की कोई भी धारणा निराधार नहीं थी इस में जितना २ हम अधिक प्राचीन ग्रन्थों की खोज करेंगे उतनी ही उस धारणा की अधिक से अधिक पुष्टि पावेंगे ॥

क्या अब मूल निरुक्त के प्रमाणों से यास्क के नित्य इतिहास का स्वरूप सूर्य्य की भांति स्पष्ट नहीं? क्या उस के पीछे आचार्य वररुचि के "निरुक्त समुच्चय" से वही बात स्पष्ट नहीं होती? क्या नैरुक्तों की परम्परा जिसे आचार्य स्कन्द स्वामी और दुर्ग ने दिखाया —उससे इस बात के मानने में यत् किञ्चित् भी सन्देह करने का स्थान रह जाता है? हम समझते हैं "निरुक्तकार वेद में (अनित्य) इतिहास मानता है" इस वाद की अन्त्येष्टि ही कर देनी चाहिये ॥

शेष रह जाता है निरुक्त के सब ऐतिहासिक स्थलों की पर्यालोचना—क्या किया जावे मेरे पास इतना समय नहीं तथापि इस विषय में कुछ स्थल विस्तार से अवकाश मिलने पर विद्वानों की सेवा में यथावसर उपस्थित करने का पूरा यत्न किया जायगा। [यहां इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि प्रभु की कृपा से उन स्थलों पर बहुत कुछ विचार किया जा चुका है। उन के पक्षपात रहित पूर्ण समाधान में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं। परन्तु यह समझा तभी जायगा जब यह कार्य विज्ञ विद्वानों की सेवा में उपस्थित होगा ॥]

वेद में इतिहास तथा अन्य आचार्य

नैरुक्तों की परम्परा के अनुसार इतिहास का स्वरूप हमने ऊपर दिखाया। अब इस विषय में अन्य आचार्यों का क्या अभिमत है यह भी दर्शा देना अनुपयुक्त न होगा। यह विदित रहे कि सायण से अतिरिक्त विविध खोज द्वारा लगभग ५० वेद भाष्यकारों का निश्चित रूपेण पता इस समय तक लगता है जिसका पूरा विवरण "वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग १" में विस्तार से

मिलेगा। इस ग्रन्थ को लिख कर श्री पण्डित भगवद्दत्त जी ने महान् उपकार किया है। यह ग्रन्थ बहुत ही परिश्रम और योग्यता से लिखा गया है॥

इन पूर्वोक्त ५० पचास वेद भाष्यकारों के सभी भाष्य तो मिलते नहीं हां लगभग दस पूर्ण तथा अपूर्ण भाष्य अभी तक मिले हैं। इन के उदाहरण हम इस समय कुछ कारणों से उपस्थित नहीं कर रहे हैं कालान्तर में हम सब उपस्थित करेंगे॥

जितने पूर्ण तथा अपूर्ण भाष्य अभी तक मिलते हैं। उन में से प्रकृत विषय में कुछ एक स्थल विद्वानों के मनोरञ्जनार्थ प्रस्तुत किए जाते हैं—

(१) **उद्गीथः**—इस आचार्य ने स्कन्द स्वामी तथा नारायण के साथ मिल कर ऋग्वेद का भाष्य किया है। पूर्व भाग पर उन दोनों का भाष्य है। अन्तिम दशम मण्डल पर उद्गीथ का भाष्य मिला है जिस का सम्पादन पं भगवद्दत्त जी कर रहे हैं—

विश्वकर्मा विमना आद् विहाया, धाता विधाता परमोत सन्दृक्॥
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति, यत्र सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः॥

ऋ० १०-८२-२

इस मन्त्र के भाष्य में उद्गीथाचार्य लिखता है—

"यस्मिन् आदित्यमण्डले सप्त ऋषीन् ऋषिर्दर्शनात्, प्रथमार्थे वात्र द्वितीया (व्यत्ययः)। सप्तसंख्याकाः सर्पणशीला वा सर्वार्थान् द्रष्टारो रश्मयः स्थिताः।

परश्चोत्तरपुरुषो मण्डलस्याधिष्ठितस्तत्रेत्यर्थः। तच्चैतत् सर्वमुदकमण्डले रश्मिनिधिष्ठातारश्च विश्वकर्माणमेवैकमाहु र्वदन्ति तत्त्वविदस्तस्य सर्वात्मकत्वात्"॥

अर्थात्— यहां मन्त्र में आये हुए सप्त ऋषि का अर्थ उद्गीथ ने रश्मि परक किया है॥

(२) **अस्यवामीये**—आत्मानन्दः

यह भाष्यकार भी आध्यात्मिक प्रक्रिया से मन्त्रों का स्थल २ पर अच्छा अर्थ करता है—इस में

(क) "अहं जीवात्मा हिरण्यस्तूपाख्यः"॥ पृ० ४६

यहां हिरण्यस्तूप का अर्थ जीवात्मा किया है॥

(ख) "अश्विभ्यां गुरुशिष्याभ्याम्॥ पृ० ६९.

अश्विनौ का अर्थ गुरु शिष्य किया है। कैसा मनोहर सुन्दर अर्थ है। यहां पर यह बात बहुत ही ध्यान देने योग्य है कि ऋषि दयानन्द जी महाराज ने "अश्विनौ" का अर्थ "अध्यापकोपदेशकौ" अपने भाष्य में कई स्थलों पर किया है—

परन्तु स्वामी दयानन्द के इस अर्थ पर मखौल उड़ाने वालों को याद रखना चाहिये कि पारदर्शी दयानन्द ने असत्य, मिथ्या कल्पना द्वारा कोई बात भी नहीं लिखी। यह दूसरी बात है कि उन के पीछे आर्य समाज ने उन के प्रत्येक विचार की प्रामाणिकता को दर्शाने में पूरा यत्न न किया हो॥

(ग) "सोमो जगदीश्वरो जीवनप्रेरकः" ॥ पृ० ९३

सोम का अर्थ जीवनप्रेरक जगदीश्वर है॥

(घ) "ऋषयः प्राणाः" ऋषि का अर्थ प्राण किया है॥ पृ० ३३

(ङ) एकैव परमात्मा देवता॥ पृ० १२१

(च) पुत्राः अवयवाः अंशाः॥ पृ० २७

(छ) "सप्त महदादयो जगत् प्रकृतयः पुत्राः कार्य्यभूता विकृतयो यस्य॥ पृ० ७

यहां पुत्र का अर्थ विकार किया है॥

(ज) "परमार्थतस्तु सर्वत्र ब्रह्मपरत्वाद् ब्रह्मैव प्रतिपादयन्ति वेदाः" ॥ पृ० १८

(झ) "सर्वोऽपि वेदो ब्रह्मपरः" ॥

अर्थात्—सब मन्त्रों में ब्रह्मपरक होने से ब्रह्म का ही सब वेद प्रतिपादन करते हैं॥

सम्पूर्ण वेद ब्रह्मपरक है॥

(३) शङ्कराचार्य रुद्रभाष्य—

"एतानि शतरुद्रीयाम्नातान्यमृतस्य नित्यमुक्तस्य परमेश्वरस्य नामधेयानीत्यर्थः" ॥ पृ० ३

एकाग्निकाण्डे-हरदत्तः—

"उशिजः। मेधाविनामैतत्॥ तत्रेतिहासमाचक्षते" ॥ पृ० ११६

"मध्यमस्थानो रुद्रो वर्षिता इति नैरुक्ताः। जगदुत्पादने स्ववीर्यस्य सेक्तेति पौराणिकाः। तस्मै मीढुषे। मीढुषी मध्यमस्थाना वाक्। रुद्रस्य पत्नीति नैरुक्ताः। जगत्प्रतिकृतिरूपेति पौराणिकाः" ॥पृ० १७३

शवरस्वामी—कुमारिलभट्ट
तथा
वेद में इतिहास

अब अन्त में हम मीमांसा के आचार्यों का मत भी इस विषय में दर्शाते हैं। जिस से यह ज्ञात हो जायगा कि इन के काल तक भी वेदार्थ की प्रक्रिया कुछ अच्छे रूप में परम्परा द्वारा प्रवृत्त रही। वास्तविक वेदार्थ का काल तो इन आचार्यों से बहुत पूर्व ही रहा है इस में शङ्कराचार्य का वेदार्थ प्रक्रिया पर कुछ न लिखना ही स्पष्ट प्रमाण है। इन उपर्युक्त आचार्यों के प्रत्येक सिद्धान्त को हम सर्वांशेन ही मानते हैं यह आवश्यक नहीं। प्रकृत 'वेद में इतिहास' विषय पर इन के विचार दिखाना मात्र ही हमारे इस प्रकरण का प्रयोजन है ॥

शवर स्वामी

(१) १-२-१० मीमांसाभाष्ये—पृ० ३३

(क) "असद्वृत्तान्तान्वाख्यानं, स्तुत्यर्थेन प्रशंसाया गम्यमानत्वात्।

(ख) वृत्तान्तान्वाख्यानेऽपि विधीयमाने आदिमत्ता दोषो वेदस्य प्रसज्येत ?......(उ०) नित्यः कश्चिदर्थः प्रजापतिः, वायुः, आकाशः, आदित्यः स्यात्" ॥

अर्थात्—असद् वृत्तान्त (जो हुवा नहीं, अर्थात् कल्पित) का अन्वाख्यान स्तुति द्वारा प्रशंसा के अभिप्राय से होता है। इस पर आगे पूर्व पक्ष उठा कर कहते हैं।

यदि कहो कि इस से तो वेद की आदिमत्ता (अनादि न होना रूप) दोष होने लगेगा। तब उस पर कहते हैं कि प्रजापति आदि कोई अनित्य व्यक्तियां नहीं अपि तु यह सब नित्य पदार्थ ही हैं ॥

अर्थात् इन का अन्वाख्यान इतिहासादि रूप से कथन करना गौण ही है ॥

(२) "ननूक्तं असंवादो वेदे ...... गुणवादेन प्ररोचनार्थतां ब्रूमहे । गौणत्वात् संवादः । किं सादृश्यम् ? यथान्नं प्रीतेः साधनं, एवमिदमपि प्रीति-साधनशक्तियुक्तं प्रशंसितुं प्रशंसावाचिना प्रीतिसाधनशब्देनोच्यते" ॥ पृ० ३६

अर्थात्—वेद में जो संवाद कहा जाता है वह गुणवाद से प्ररोचना के लिए है ऐसा हम समझते हैं । गौणता से संवाद है । ...... जिस प्रकार अन्न प्रीति (संतुष्टि) का साधन होता है इसी प्रकार यह संवाद भी प्रीति के साधनों की शक्ति से युक्त (पदार्थ) की प्रशंसा के निमित्त प्रशंसा वाची, प्रीति के साधन, शब्दों द्वारा कहा जाता है" ॥

वेद में संवाद प्ररोचनार्थ, गौण होता है । इतना यहां अभिप्रेत है ॥

(३) "वृत्तान्तान्वाख्यानं न च वृत्तान्तज्ञापनाय । किं तर्हि प्ररोचनायैव" ॥ पृ० ३८

(४) "नदीति नद्याः स्तुतिः । यज्ञसमृद्धये साधनानां चेतनसादृश्यमुपपादयितुकाम आमन्त्रणशब्देन लक्षयति । 'ओषधे त्रायस्वैनम्' इति । 'शृणोत ग्रावाणः' इति । यत्राचेतनाः सन्तो ग्रावाणोऽपि शृणुयुः, किं विद्वांसो ब्राह्मणा इति" ॥ पृ० ४३ ।

अर्थात् वेद में चेतनों के सादृश्य से अचेतनों में चेतनावद् व्यवहार होता है । सम्बोधन आमन्त्रण आदि होने से यह न समझना चाहिये कि ये चेतन ही हो गये ॥

इस विषय में महाभाष्यकार पतञ्जलि ने "हेतुमति च" सूत्र के भाष्य में "अचेतनेष्वपि चेतनवदुपचारः" ऋषिः पठति । शृणोत ग्रावणः । पिपतिपति कूलम ॥ जो लिखा है वह स्पष्ट उपर्युक्त लेख के सदृश है । यह पूर्व पृ० ५१ पर भी लिखा जा चुका है ॥

भट्ट कुमारिल

(१) मी० तन्त्रवार्त्तिक—पृ० ६४ ।

"यथैव च व्याकरणेन नित्यपदान्वाख्याने क्रियमाणे लोपविकारादीनामुपायत्वेनोपादानं, अव्युत्पन्नाश्च तैरेव पदोत्पादनमिव मन्यन्ते । तथाऽत्र नित्यवाक्यार्थप्रतिपत्तौ 'आर्षेयोपाख्यनमनित्यवदाभासमानं उपायत्वं प्रतिपद्यते । तत्र यथा कश्चिद् व्याचक्षाणः पदतद्वयवादीनां चेतनत्वामविध्यस्य विशेष-

वधादिव्यापारं निरूपयत्येतेनैवमुक्तोऽयमेवं प्रत्याह । यथा च पूर्वपक्षोत्तरपक्ष-वादिनौ व्यवहारार्थं कल्पिताववेमृष्यार्षेयविषया कल्पना ॥

भाव यह है कि नित्य वाक्यार्थ के ज्ञान में ऋषियों सम्बन्धी उपाख्यान (कथा सम्वादादि) अनित्य जैसा प्रतीत होता है। अनित्यवदाभासमानं—अर्थात् वह होता तो नित्य है परन्तु अनित्य सा प्रतीत होता है। उस में जैसे कोई व्याख्यान करता हुवा किन्हीं पदों तथा उनके अवयवों को चेतन के सदृश अध्यास (अध्यारोप) करता हुवा तद् विषयक वधादि का निरूपण करता है उनके परस्पर सम्वाद का वर्णन करता है, इसी प्रकार ऋषि तथा तत् सम्बन्धी आर्षेय (उपाख्यानादि) की कल्पना की जाती है॥

अर्थात् यह उपाख्यानादि कल्पित ही होते हैं न कि वास्तविक ॥

(२) मी० तन्त्रवार्त्तिक पृ० ६६

"एकेन प्रयत्नेनापिबत् साकं यौगपद्येन सरांसि पात्राणि सोमस्य पूर्णानि इन्द्रः काणुका कामयमानः कामुकाशब्दस्य छान्दसो वर्णव्यत्ययः । आकारस्तु विभक्त्याः । अथवा कान्तकानीत्यादयो निरुक्तोक्ताः काणुका-शब्दविकल्पा योजनीयाः ॥

तदेवं सर्वत्र केनचित् प्रकारेणाभियुक्तानामर्थोत्प्रेक्षोपपत्तेः प्रसिद्धतरा-र्थाभावेऽपि वेदस्य तदभ्युपगमात् सिद्धमर्थवत्त्वम्" ॥

अर्थात्—काणुका आदि शब्द कान्तकानि अर्थों के बोधक हैं न कि कोई व्यक्ति विशेष । निरुक्त की इस यौगिक प्रक्रिया के आधार पर वेद के अप्रसिद्ध शब्दों के अर्थ की योजना भी कर लेनी चाहिये ॥

(३) मी० तन्त्रवार्त्तिक पृ० ६७

"कीकटा नाम यद्यपि जनपदाः । तथापि नित्याः । अथवा सर्वलोकस्थाः कृपणाः कीकटाः ...... ।

कीकटा का अर्थ पक्ष में कृपणाः ऐसा दर्शाते हैं ॥

(४) मी० तन्त्रवार्त्तिक पृ० १३३

"यत्तु प्रजापतिरुषसमभ्यैत् स्वां दुहितरमहल्यायां मैत्रेय्यां इन्द्रो जार आसीदित्येवमादिदर्शनादितिहासदर्शनाच्च शिष्टाचारेषु धर्मातिक्रमं पश्यद्भिः शिष्टाचारप्रामाण्यं दुरध्यवसानमिति । तत्रोच्यते .... प्रजापति-

स्तावत् प्रजापालनाधिकारादादित्य एवोच्यते । स चारुणोदयवेलायामुप-समुद्यन्नस्यैत, सा तदागमनादेवोपजायत इति तद्दुहितृत्वेन व्यपदिश्यते, तस्यां चारुणकिरणाख्यबीजनिक्षेपात स्त्रीपुरुषयोगवदुपचारः । एवं समस्ततेजाः परमैश्वर्यनिमित्तेन्द्रशब्दवाच्यः सवितैवाहनि लीयमानतया रात्रेरहल्या-शब्दवाच्यायाः क्षयात्मकजरणहेतुत्वाज् जीर्यत्यस्मादनेनेवोदितेनेत्यादित्य एवाहल्याजार इत्युच्यते न तु परस्त्रीव्यभिचारात् ।

अभिप्राय इतना ही है कि प्रजापति नाम है आदित्य का । और अहल्या नाम है रात्रि का । उस की दुहिता है उषा । जीर्ण करने से जार नाम है आदित्य का । कुमारिल भट्ट भी इन कथाओं को औपचारिक मानते हैं यही दिखाना यहां हमको अभिप्रेत है ॥

(५) मी० तन्त्रवार्त्तिक पृ० १४७

तस्माद्ये याज्ञिकैर्येषां वैद्यैर्वार्था निरूपिताः ।

तेषां त एव शब्दानामर्था मुख्या हि नेतरे ॥

मन्त्रों के अर्थ याज्ञिक प्रक्रिया-तथा वैद्यक की रीति से भी होते हैं ॥

(६) मी० तन्त्रवार्त्तिक पृ० १५३

अर्थवादकृताप्यर्थप्रतिपत्तिर्बलीयसी ।

तद् ग्राह्यत्वादृते नान्यत् तस्या ह्यस्ति प्रयोजनम् ॥

अर्थवाद से भी अर्थ की प्रतिपत्ति होती है । अर्थ को ग्रहण कराना ही उस का प्रयोजन होता है ॥

(७) मी० तन्त्रवार्त्तिक पृ० १५५

गौणं लाक्षणिकं वापि वाक्यभेदेन वा स्वयम् ।

वेदोऽयमाश्रयत्यर्थं को नु तं प्रतिकूलयेत् ॥

वेद का अर्थ गौण-तथा लाक्षणिक वाक्य भेद से होता है । उस को कोई अन्यथा नहीं कर सकता ।

(८) मी० तन्त्रवार्त्तिक पृ० १५६

अनन्तेषु हि देशेषु कः सिद्धः केति गम्यताम् ।

निगमादिवशाच्चात्र धातुतोऽर्थः प्रकल्पितः ॥

वेदार्थ में धातु से अर्थ की योजना करनी ही पड़ेगी ॥

कुमारिल के इन अनेक उदाहरणों से स्पष्ट है कि वह इन उपाख्यान, इतिहासादि को औपचारिक मानते हैं। आयुर्वेद की प्रक्रिया से मन्त्रों के अर्थ की क्या व्यवस्था है इस से सज्जनों को बड़ा आनन्द होगा उसे उपस्थित करते हैं—

वैद्यकशास्त्र और इतिहास

जैसा हम ने पूर्व कुमारिलभट्ट के तन्त्रवार्त्तिक पृ० १४७ का लेख—

तस्याद्ये याज्ञिकैर्येषां वैद्यैर्वार्थां निरूपिताः।
तेषां त एव शब्दानामर्था मुख्या हि नेतरे ॥

अर्थात्—वैद्यक की प्रक्रिया से भी वेदमन्त्रों के अर्थ होते हैं सो इस विषय में मैं विद्वानों के मनोरञ्जनार्थ एक विचार उपस्थित करता हूं—

देखिए वैद्यक शास्त्र में सुश्रुत सूत्रस्थान ५ अध्याय में जहां भिन्न २ देवताओं का वर्णन किया गया है—

"यस्त्विन्द्रो लोके पुरुषे ऽहङ्कारः सः।......रुद्रो रोषः। सोमः प्रसादः। वसवः सुखम्, अश्विनौ कान्तिः, मरुदुत्साहः, तमो मोहः, ज्योतिर्ज्ञानम्......"

अर्थात्—लोक में जो इन्द्र है, पुरुष में वही अहङ्कार है। रोष रुद्र है। सोम नाम है प्रसाद का प्रसन्नता का। वसवः सुख का नाम है। कान्ति का नाम अश्विनौ है। उत्साह का नाम मरुत् है। मोह तम है। ज्ञान ही ज्योतिः है ॥" इत्यादि ॥

इस से भी स्पष्ट है कि इन्द्र, रुद्र, अश्विनौ आदि व्यक्तिविशेषों के नाम (Proper names) नहीं, अपि तु शरीर में भिन्न २ शक्तियां हैं ॥

2. Vedic Gods.

इस नाम की एक पुस्तक अङ्गरेज़ी भाषा में कलकत्ता से प्रकाशित हुई है जिस के लेखक श्री रेले महाशय हैं। उन्हों ने वेदों के मन्त्रों को ले कर उन से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि अश्विनौ, मरुत् आदि शरीर सम्बन्धी भिन्न भिन्न शक्तियां तथा नाडी आदि अवयव हैं। जो भिन्न २ कार्य करती हैं ॥

सज्जनों के विनोदार्थ हम कुछ विचार देते हैं—

उक्त ग्रन्थ में क्रमशः लगभग २० देवताओं पर विचार किया गया है—

१. त्वष्टा	२. ऋभवः	३. सविता	४. अश्विनौ	५. मरुतः
पर्जन्य	उषा	विष्णु	रुद्र	पूषा
सूर्य	अग्नि	इन्द्र	आदित्य	बृहस्पति
सोम	वरुण	मित्र	आपः	,,

ग्रन्थकार ने इन देवताओं को शरीर में ही घटाने का प्रयास किया है। केवल कल्पना मात्र से नहीं अपि तु तद् तद् विषय में ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों को भी दिया है। जिस से लेखक की वेद विषय में अच्छी योग्यता प्रतीत होती है॥ उस में—

पृ० ७८—पूषा को सैरी बैलम (छोटा दिमाग़)
,, ६५ इन्द्र ,, सैरी ब्रम (बड़ा दिमाग़)
,, '५४ मरुतः ,, क्रेनियल नर्वज़ (दिमाग़ की नाड़ियां, तन्तु)
,, ५८ पर्जन्य ,, reflex activity बाह्य संस्कारों से प्रतिबिम्बित प्रेरणा
,, ६२ उषा ,, वेगस नर्वज़ (हृदय और श्वास प्रश्वासों का केन्द्र)
,, ६७ विष्णु ,, स्पाइनल काड=रीढ़ की अन्दर की सुषुम्णा
,, ७५ रुद्र ,, पौनज़=ज्ञान तन्तुओं का एक Pons समूह
,, ८३ सूर्य ,, कार्पस स्ट्राइटाटस=प्रेरक मुख्य ज्ञान तन्तु
,, ८६ अग्निः ,, थैलमस=अनुभव करने वाले ज्ञान मुख्य तन्तु समूह
,, १०५ अदिति ,, दिमाग़ का एक भाग (मध्यवर्ती प्रेरक)
,, ११८ बृहस्पति को Speech center.

यह सब व्याख्या वेदमन्त्रों के आधार पर की है। कैसी उत्तम योजना है। वास्तव में जब तक वेदाङ्ग, उपाङ्ग, आयुर्वेद, धनुर्वेद, अर्थवेद, गान्धर्ववेद, इत्यादि में प्रतिपादित शिल्पादि क्रिया, ज्योतिष, औषध, गानादि का पूर्ण ज्ञान नहीं होता तब तक वेदार्थ बालकों का खेल नहीं है जो पुस्तक उठाई और भाष्य रच डाला। वास्तविक वेदार्थ का प्रकाश तभी हो सकेगा जब अङ्गों उपाङ्गों तथा उपवेदादि की प्रौढता से ज्ञान प्राप्त करने की पूरी योजना की जायेगी॥

उपर्युक्त Vedic Gods. नामक ग्रन्थ आङ्गलभाषा जानने वालों को अवश्य पढ़ना चाहिए। ऐसे ग्रन्थों का आर्यभाषा में भी अनुवाद होना चाहिए। कोई योग्य डाक्टरी और वेद विषय को समझने वाले इस पर सम्भवतः अधिक प्रकाश डाल सकते हैं॥

उपसंहार

उपर्युक्त प्रकरण में हमने निम्न बातों को स्पष्ट करने का यत्न किया है :—

निरुक्त में अनेक स्थलों पर यास्क ने ऐतिहासिक पक्ष दिखाया है पर वह सब उपमार्थ—ऋषियों की आख्यान कहने की प्रीति से है। ब्राह्मणों में विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठादि शब्द जड़ पदार्थों और प्राण आदि के लिये स्पष्ट कहे गये हैं। निरुक्त के पीछे प्राचीन नैरुक्त आचार्य वररुचि ने "औपचारिको ऽयं मन्त्रेष्वाख्यान-समय इति नैरुक्तानां सिद्धान्तः" मन्त्रों में आख्यान-इतिहास औपचारिक है यह नैरुक्तों का सिद्धान्त है। यह घोषणा स्पष्ट शब्दों में की है ॥

इस स्पष्ट घोषणा के इन्हीं शब्दों को वर्त्तमान उपलब्ध वेद भाष्यकारों में सर्वतः प्रथम आचार्य स्कन्द स्वामी ने खुले शब्दों में घोषित किया और एक प्रकार से अपने निरुक्त भाष्य में इसी घोषणा-धारणा का सर्वत्र अवलम्बन कर इतिहासादि की लुप्त प्रक्रिया को संसार में पुनरुज्जीवित कर दिया। जिस के लिये हमें उस का अति कृतज्ञ होना चाहिये ॥

दुर्ग ने भी इसी औपचारिक प्रक्रिया का अनेक स्थलों में परिपालन किया। इन दोनों आचार्यों के अनेक प्रमाण दर्शाये गये। जिन से किसी को भी निरुक्त-कार वेद में इतिहास मानता है इस विषय का सन्देह नहीं रह जाता। हां हठ-धर्मी दूसरी बात है ॥

महर्षि दयानन्द और ऐतिहासिक पक्ष

ऋषि दयानन्द ने वेद पर अपने अपूर्व ग्रन्थ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में निम्न प्रकार इस विषय में अपनी धारणा लिखी है :—

(क) "एवमेव ब्रह्मवैवर्त्तादिषु मिथ्यापुराणसंज्ञासु किंच नवीनेषु मिथ्याभूता बह्व्यः कथा लिखिताः .... अस्यां परमोत्तमायां रूपकालङ्कारविधायिन्यां निरुक्त-ब्राह्मणेषु व्याख्यातायां कथायां सत्यामपि ब्रह्मवैवर्त्तादिषु भ्रान्त्या याः कथा अन्यथा निरूपितास्ता नैव कदाचित् केनापि सत्या मन्तव्या ॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० २९६-२९८ ॥

जो वह रूपकालङ्कार की कथा अच्छी प्रकार ब्राह्मण और निरुक्त आदि सत्य ग्रन्थों में प्रसिद्ध है। इस को ब्रह्मवैवर्त्त श्रीमद्भागवतादि मिथ्या ग्रन्थों में भ्रान्ति से बिगाड़ के लिख दिया है तथा ऐसी २ अन्य कथा भी लिखी हैं। उन सब को विद्वान् लोग मन से त्याग के सत्य कथाओं को कभी न भूलें॥

(ख) "ईदृश्यः प्रमत्तगीतवत् प्रलपिताः कथाः पुराणाभासादिषु नवीनेषु ग्रन्थेषु मिथ्यैव सन्तीति भद्रैर्विद्वद्भिर्मन्तव्यम्। कुतः ?। एतासामप्यलङ्कारवत्त्वात्॥ पृ० ३०१

(ग) "एवं परमोत्तमायां विद्याविज्ञापनार्थायां रूपकालङ्कारेणान्वितायां सत्यशास्त्रप्रकृतायां कथायां सत्यां, व्यर्थपुराणसंज्ञकेषु नवीनेषु तन्त्रादिषु ग्रन्थेषु च या मिथ्यैव कथा वर्णिताः सन्ति, विद्वद्भिर्नैवेताः कथाः कदाचिदपि सत्या मन्तव्याः इति"॥

पृ० ३०८

"अतो नात्र मन्त्रभागे हीतिहासलेशोऽप्यस्तीत्यवगन्तव्यम्। अतो यच्च सायणाचार्यादिभिः वेदप्रकाशादिषु यत्र कुत्रेतिहासवर्णनं कृतं तद् भ्रममूलमस्तीति मन्तव्यम्"॥

अतः यहां मन्त्रभाग में इतिहास का लेश मात्र भी नहीं है ऐसा समझना चाहिए। इसलिए जो सायणाचार्यादिकों ने अपने भाष्यों में जहां कहीं इतिहास का वर्णन किया है वह भ्रम के कारण ही है ऐसा जानना चाहिए॥

ऋषि दयानन्द की घोषणा कैसे प्रबल शब्दों में है। हमारा उपर्युक्त सम्पूर्ण लेख वस्तुतः ऋषि की इस धारणा की पुष्टि के निमित्त से ही लिखा गया है। एक भी शब्द प्रमाण रहित नहीं है॥

सायणाचार्य तथा ऐतिहासिक पक्ष

हमें बहुत यत्न करने पर भी सायणाचार्य के भाष्य में स्कन्द स्वामी की ऐतिहासिक प्रक्रिया का स्वरूप दृष्टिगत नहीं हुवा॥

हमें अत्यन्त आश्चर्य होता है कि सायणाचार्य ने अपने से पूर्ववर्त्ती महाविद्वान् आचार्य स्कन्द स्वामी, भट्ट भास्कर, उद्गीथ, वेङ्कटमाधव, आत्मानन्द तथा अन्य

अनेक आचार्यों का उल्लेख तक नहीं किया। उन के समय में ये सब आचार्य सर्वथा अज्ञात अवस्था में हों यह बात साधारण बुद्धि भी नहीं मान सकती। उस ने केवल माधव का नाम तो लिखा है ॥

हम कह सकते हैं यदि वह अपने पूर्ववर्त्ती आचार्यों की परम्परागत इन प्रक्रियाओं को ले कर भाष्य करते तो संसार में वेदार्थ के विषय में इतना अन्धकार नहीं होता ॥

जिन लोगों को सायणाचार्य ही वेद के अपूर्व विद्वान् दृष्टिगत होते हैं। उन का भाष्य ही सुसङ्गत, सुसम्बद्ध और सोपपन्न जान पड़ता है वह किञ्चित् चक्षु खोल कर इस विषय में देखें कि इन से पूर्वाचार्यों ने वेदार्थ को कहां तक व्यक्त किया है ॥

वेद की ऐतिहासिक प्रक्रिया सायणाचार्य की समझ में ही नहीं आई यही विवशतः कहना पड़ता है। यदि समझ में आई होती तो वह अवश्य इस का व्याख्यान करते ॥

यास्क के अनेक वाद

यह बात सभी विद्वान् स्वीकार करेंगे कि यास्क ने अपने निरुक्त में अनेक वादों का उल्लेख किया है। जो निम्न प्रकार है—

(१) अध्यात्मम् लगभग १०-१२ स्थलों में।
(२) अधिदैवतम् ,, ,, ,,
(३) आख्यान समयः
(४) ऐतिहासिकाः } १६ स्थलों में
(५) नैदानाः
(६) नैरुक्त पक्ष २० स्थलों में
(७) परिव्राजकमत १ स्थल पर
(८) पूर्वे यज्ञिकाः १ ,,
(९) याज्ञिकाः ८ स्थलों पर ॥

ऐतिहासिक, नैदान और आख्यानसमय इन तीनों (जो वास्तव में अति स्वल्प भेद होते हुये एक ही पक्ष है) पर पर्य्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। परिव्राजक और अध्यात्म लगभग एक ही हैं। इन की तथा नैरुक्त पक्षों की व्याख्या उन्हीं वादों से हो जाती है। अर्थात् प्रवक्तृभेद से दर्शन भेद

होता है इस विषय में बहुत सामग्री अनेक आचार्यों के मत से दर्शा दी गई है। मन्त्रों के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधियज्ञिक भी अर्थ होते हैं। इस विषय की अनेक साक्षियां ऊपर दी गई हैं। इन सब वादों में वेद मन्त्रों के अर्थ होते हैं यह सब वैदिक धर्मियों को स्वीकार करने में आपत्ति नहीं॥

निरुक्त के शेष ऐतिहासिक पक्ष

ऐसे ऐतिहासिक स्थल जिन की योजना इन पूर्वोक्त स्कन्द तथा दुर्ग आदि आचार्यों ने नहीं दर्शाई उन को हम क्रमशः पृथक् निबन्ध द्वारा दिखाने की इच्छा रखते हैं। अवकाश तथा समुपयुक्त सामग्री प्राप्त होने पर (जिन में बहुत सी हो चुकी है) हम सम्पूर्ण निरुक्त पर ही विचार उपस्थित करना चाहते हैं॥

"ईश्वराधीनं सर्वम्" प्रभु की कृपा से ही ऐसे महान् कार्य पूरे हो सकते हैं। अतः वह बलदः परमात्मा बल प्रदान करें जिस से ऋषियों के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करते हुये प्रभु की पतितपावनी वेदवाणी का सत्य स्वरूप संसार में विस्तृत हो। यही उन प्रभु से पुनः २ प्रार्थना है॥

अन्तिम निवेदन

हां अन्त में हम एक बात और कह देना आवश्यक समझते हैं कि निरुक्त के सभी स्थल हमने पूर्णरीति से लगा लिये हैं यह बात नहीं। हां ऐतिहासिक पक्ष के विषय में कुछ भी सन्देह नहीं। अन्य विषय के कुछ स्थल विचारणीय अवश्य हैं पर वे सब वैसे ही हैं जैसे कि अन्य ऋषि प्रणीतग्रन्थों में कहीं २ पर विचारणीय स्थल हैं। वह सब भी अन्य आर्ष ग्रन्थों की भांति धीरे धीरे निःसंशय हो सकेंगे। ऐसी हमें पूरी आशा है॥

अब निरुक्त से पूर्व वेदार्थ की क्या व्यवस्था थी? यास्क की वेदार्थ प्रक्रिया का उद्गम स्थान क्या है? निघण्टु निरुक्त की आवश्यकता ही कैसे हुई? वर्तमान व्याकरण की प्रक्रिया को यास्क ने क्यों ग्रहण नहीं किया? निरुक्त का परिमाण इत्यादि और भी अनेक विचार निरुक्त के विषय में हो सकते हैं। पर मैं ने इन विषयों को अपने प्रकृत विषय में अधिक उपयोगी न समझ कर ही छोड़ दिया है जिस पर पुनः किसी समय विचार हो सकता है॥

॥ धन्यवाद ॥